* श्रीगणे

* अ

* भाषाटीका सहिता *

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते ॥ १ ॥

बडे भय से रचा करनेवाली अभेदबुद्धि पुरुष श्रेष्ठ ब्राह्मणों में उत्पन्न होती है ॥ १ ॥

येनेदंपूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि ।
निराकारंकथंवन्दे ह्यभिन्नंशिवमव्ययम् ॥ २ ॥

जिसने अपने आत्मारूप माया से इस सब विश्वको अपने बीचमें रचा है वह निराकार है, सबमें व्याप्त है, कल्याणरूप है,अविनाशीहै,उसकी किसतरह वन्दनाकरूं॥२॥

पञ्चभूतात्मकं विश्वं मरीचिजलसन्निभम् ।
कस्याप्य हो नमस्कुर्यामहमेको निरञ्जनः॥३॥

पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इन पांच तत्वों से बना हुआ जो जगत है सो मृगतृष्णाके जलके समान झूंठा है मैं एक और निरंजन हूं अहो ! मैं किसके लिये नमस्कार करूं ॥ ३ ॥

आत्मैव केवलं सर्वं भेदाभेदो न विद्यते ।
अस्तिनास्तिकथं ब्रूयां विस्मयःप्रतिभाति मे॥४

केवल आत्मा ही सबमें है इसमें भेद और अभेद कुछ नहीं है इसके सम्बन्ध में अस्ति नास्ति (है वा नहीं है) किस तरह कहा जाय ये मुझको बड़ा आश्चर्य मालुम होता है ॥

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानविज्ञानमेव च ।
अहमात्मानिराकारःसर्वव्यापी स्वभावतः॥५॥

वेदान्तोंका सार सर्वस्व यही है और यही ज्ञान, विज्ञान है कि स्वभाव से सब में वर्तने वालों और निराकार जो आत्मा है वह में ही हू ॥ ५॥

यो वै सर्वात्मको देवो निष्कलो गगनोपमः ।
स्वभाव निर्मलःशुद्धःसएवाहं न संशयः ॥६॥

जो देव सबकी आत्मा है कला रहित है आकाश के समान है स्वभाव से निर्मल और शुद्ध है वही मैं हूँ इसमें संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

अहमेवाव्ययोऽनन्तःशुद्धविज्ञानविग्रहः ।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापिवर्तते॥७॥

मैंही अविनाशी और अनन्त (जिसका अन्त नहीं है) हू शुद्ध ज्ञानस्वरूप मैं ही हूं। सुख और दुःख किसको और किसतरह उपस्थित होते हैं यह मैं नहीं जानता हू ॥७॥

न मानसं कर्म शुभा शुभं मे।
न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे॥
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे।
ज्ञानामृतं शुद्धमतींद्रियोऽहम्॥८॥

मेरे बीच में मन संबन्धी शुभ अशुभ कर्म नहीं हैं शरीर संबन्धी शुभ अशुभ कर्म नहीं हैं वाणी संबन्धी शुभ अशुभ कर्म मुझमें नहीं हैं मैं ज्ञानअमृत स्वरूप हूं, शुद्ध हूं और इन्द्रियों से परे हूं॥ ८॥

मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम्।
मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः॥९॥

मन आकाश के समान है मन चारों तरफ से मुखवाला है मन परे है मनही सबहै वास्तव में आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है॥ ९॥

अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतं निरन्तरम्।
पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वातिरोहितं १०

यह सब विश्व आकाश से परें और सदा है यह मैं देखताहूं परन्तु आत्मा प्रत्यक्ष है वा छिपा हुआ यह मैं किस तरह से देख सकता हूं॥ १०॥

त्वमेवमेकं हि कथं न बुध्यसे।
समं हि सर्वेषु विमृष्टमव्ययम्॥

सदोदितोऽसि त्वमखण्डितः प्रभो।
दिवा च नक्तं च कथं हि मन्यसे ॥११॥

तुम एक हो, इसलिए समता क्यों नहीं देखते हो, तुम संपूर्ण प्राणियों में अविनाशी और समभाव में रहते हो हे प्रभो! तुम सदा प्रकाश रूप और अखण्डित हो फिर दिन और रात को किस प्रकार मानते हो ॥ ११ ॥

आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम्।
अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्ड्यते कथम् १२

आत्मा सदा सब जगह एक है और नित्य है यह जानो मैं ध्यान करने वाला और परमध्येय अर्थात् ध्यानके योग्य हूं यह कहकर उस अखण्डित पुरुष को किस प्रकार से खण्डित करते हो ॥ १२ ॥

न जातो न मृतोऽसि त्वं न ते देहः कदाचन।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः॥१३॥

न तूने जन्म लिया है, न मरा है, न तेरा कभी शरीर है सब ब्रह्म है इस बात को श्रुति अनेक प्रकार से कहती है १३

सबाह्याभ्यन्तरोऽसि त्वं शिवः सर्वत्र सर्वदा।
इतस्ततः कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् १४

तू बाहर है और भीतर है सब जगह सदा शिव रूप है इधर उधर पिशाचकी तरह क्यों घूमता फिरता है ॥१४॥

संयोगश्च वियोगश्च वर्तते न च ते न मे ।
न त्वं नाहं जगन्नेदं सर्वमात्मैव केवलम् ॥ १५ ॥

तेरा और मेरा न संयोग है, न वियोग है, न तू है न मैं हूं न येजगत्है सब जोकुछ है केवल ब्रह्मही है। १५।

शब्दादिपञ्चकस्यास्य नैवासि त्वं न ते पुनः ।
त्वमेव परमं तत्वमतः किं परितप्यसे ॥ १६ ॥

शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, इनके बीचमेंतू नहीं है और न वे तेरे बीचमें हैं तू परम तत्व है इससे क्यों सन्ताप करता है ॥ १६ ॥

जन्म मृत्युर्नते चित्तं बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ।
कथंरोदिषि रे वत्स नामरूपं न ते न मे ॥ १७ ॥

न तेरा जन्म है न मृत्यु है न तेरा चित्त है न बन्धन और मोक्ष है न शुभ और अशुभ है अतएव रे वत्स ! तू क्यों रोता है ? यह सब नाम और रूपमात्र है न तेरा है न मेरा है ॥ १७ ॥

अहो चित्त कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ।
अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव १८

हेचित्त ! तूघबड़ाकरपिशाचकी तरह क्योंदौड़ता फिरता है आत्मा को अभिन्न भाव में देख और विषयों को छोड़कर सुखी हो ॥ १८ ॥

त्वमेव तत्वं हि विकार वर्जितं ।
निष्कम्पमेकं हि विमोक्ष विग्रहम् ॥
न ते च रागो ह्यथवा विरागः ।
कथं हि संतप्यसि कामकामतः ॥१९॥

तूही विकार तत्व एक निष्फल और मोक्षस्वरूप है न तेरे राग है न विराग है फिर विषय वासना में लीन होकर क्यों सन्ताप करता है ॥ १९ ॥

वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम् ।
अशरीरं समं तत्वं तन्मां विद्धि न संशयः २०

सब श्रुति कहती हैं कि ईश्वर निर्गुणहै शुद्ध है अविनाशी है उसके शरीर नहीं है समान है तत्व है वह मैं ही हूं सो जान इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभवः ॥ २१ ॥

साकार झूठा है निराकार नित्य है यह जान, इसी तत्व के उपदेशसे फिर संसार में नहीं आवेगा ॥ २१ ॥

एकमेव समं तत्वं वदंति हि विपश्चितः ।
रागत्यागात्पुनश्चित्तमेकानेकं न विद्यते ॥२०॥

विद्वान कहते हैं कि एक ही समान तत्व है विषयों को छोड़ देने से चित्त एकाग्र होजाता है फिर डामाडोल नहीं होता है ॥ २२ ॥

अनात्मरूपं च कथं समाधि-
रात्मस्वरूपं च कथं समाधिः ॥
अस्तीति नास्तीति कथं समाधि-
र्मोक्षस्वरूपं यदि सर्वमेकम् ॥२३॥

जो आत्माका रूप नहीं हैं तौ फिर समाधि किस तरह होसकती है और जो अपनाही स्वरूप है तौ भी समाधि कैसेहै ये पदार्थ है ये नहीं है इस प्रकार जो बुद्धि में कल्पनाहै तौभी समाधि कैसे है ये सब एकहै और मोक्ष स्वरूप है ॥ २३ ॥

विशुद्धोऽसि समं तत्त्वं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः।
जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसेकथं २४

तू शुद्ध है समान तत्व है देह रहित है अजन्मा है अविनाशी है मैं जानताहूं और नही जानता हूं तू आत्माको किस तरह मानता है॥ २४ ॥

तत्वमस्यादिवाक्यैश्चस्वात्माहिप्रतिपादितः ।
नेतिनेतिश्रुतिर्ब्रूयादनृतं पाञ्चभौतिकम् ।२५

वह तू है इत्यादि वाक्यों से आत्मा प्रतिपादन किया जाता है यह भी नहींहैयह भी नहीं है इस प्रकार से श्रुति इस [१] पंचभूत से बनेहुए विश्वको झूठा बतलाती है२५

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ये पांच तत्व हैं।

आत्मन्येवात्मना सर्वं त्वया पूर्णं निरन्तरम्।
ध्याता ध्यानं न ते चित्तं निर्लज्जं ध्यायते कथं २६

तुमने अपने वीच में आत्मासे सब विश्वको पूर्ण किया है तू ध्यान करने वाला है दूसरे के ध्यान में नहीं आताहै फिर निर्लज्ज होकर क्यों ध्यान करता है ॥ २६ ॥

शिवं न जानामि कथं वदामि।
शिवं न जानामि कथं भजामि॥
अहं शिवश्चेत्परमार्थ तत्वं।
समस्वरूपं गगनोपमं च॥ २७ ॥

शिवको मैं नहीं जानताहूं किसतरह बताऊं शिवको जानता नहींहूं किसतरह भजूं यदि मैंही शिवहूं तो परम-तत्वरूपहूं समान स्वरूपहूं आकाशके समानहूं ॥ २७॥

नाहं तत्वं समं तत्वं कल्पनाहेतुवर्जितम्।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं स्वसंवेद्यं कथं भवेत्॥२८॥

कल्पना और हेतु इनसे रहित जो समानतत्व है वह मैं नहीं हूं ग्राह्य=ग्रहण करने योग्य और ग्राहक=ग्रहण करनेवाला ये दोनों बात उसमें नहीं हैं अर्थात् न तो वह किसी से ग्रहण किया जाताहै न वह किसीको ग्रहण करता है वह ऐसा ईश्वर अपने आप किसप्रकार जाना जा सकता है ॥ २८ ॥

अनंतरूपं न हि वस्तु किंचित्।
तत्वस्वरूपं नहि वस्तु किंचित्॥
आत्मैकरूपं परमार्थतत्वं।
न हिंसको वापि न चाप्यहिंसा ॥२९॥

कोई वस्तु अनंतरूप नहीं है, कोई वस्तु तत्स्वरूप भी नहीं है, परम अर्थ और तत्वका स्वरूप एक आत्मा ही है, इसमें हिंसा और अहिंसा का कुछभी भाव नहीं है २९

विशुद्धोऽसि सम तत्वं विदेहमजमव्ययम्।
विभ्रमं कथमात्मार्थे विभ्रान्तोऽहं कथं पुनः ३०

तू विशेष शुद्ध है समान तत्वहै देहरहित है अजन्माहै और विनाशरहित है फिर आत्माके अर्थ भ्रम क्यों है और मैं और तू क्यों चक्कर में पड़े हैं। ३०॥

घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम्।
शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभाति मे ३१

घड़े के फूट जाने पर जो घड़े के भीतर आकाश है वह महा आकाश में लीन होजाता है और उसमें भेद नहीं रहता है इसीप्रकार मनके शुद्ध होने पर जीव शिवमें लीन होजाता है मुझको भेद नहीं मालूम होताहै। ३१॥

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः।
केवलं ब्रह्म संविद्धि वद्यवेदकवर्जितम्॥ ३२॥

न घड़ा है, न घटाकाश (घड़े का आकाश है,) न जीव है न जीव का शरीर है, जानने योग्य और जानने वाला इन दोनों से वर्जित वह ब्रह्म है सो जान ॥ ३२ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सततं ध्रुवम् ।
सव शून्यमशून्यं च तन्मां विद्धि न संशयः ३३

सब जगह सदा सबका स्वरूप आत्मा है सर्वव्यापी है और नित्यहै और सब शून्य है और शून्य रहित है वह मैं हूं सो जान इसमें संदेह नही है ॥ ३३ ॥

वेदा न लोका न सुरा न यज्ञा ।
वर्णाश्रमौ नैव कुलं न जातिः ॥
न धूममार्गो न च दीप्तिमार्गो ।
ब्रह्मैकरूपं परमार्थतत्वम् ॥ ३४ ॥

न वेद हैं न लोक हैं न देवता हैं न यज्ञहैं न वर्णाश्रम हैं न कुलहै न जाति है न धूममार्ग है न तेज का मार्ग है एक ब्रह्मरूपही परमार्थ का तत्वहै ॥ ३४ ॥

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तं त्वमेकः सफलो यदि ।
प्रत्यक्षं चापरोक्षं च ह्यात्मानं मन्यसे कथम् ३५

व्याप्त होने के योग्य और व्यापक इनसे भिन्न जो एक तुमहो यदि सब में होतो आत्मा को प्रत्यक्ष और परोक्ष कैसे मानते हो ॥ ३५ ॥

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।
समं तत्वं न विन्दंति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।३६।

कोई द्वैत को मानते हैं कोई अद्वैत को मानते हैं द्वैत और अद्वैत से भिन्न जो समान तत्व है उसको नहीं प्राप्त होते हैं ।

श्वेतादिवर्णरहितं शब्दादिगुणवर्जितम् ।
कथयन्ति कथं तत्वं मनोवाचामगोचरम् ॥

श्वेतादिवर्ण से रहित हैं शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श. इन गुणोंसे वर्जित है मन और वाणी जिसमें पहुँचते नहीं हैं ऐसे तत्वको आदमी किस प्रकार कहते हैं ॥ ३७ ॥

यदाऽनृतमिदं सर्वं देहादिगगनोपमम् ।
तदा हि ब्रह्म संवेत्ति न ते द्वैतपरंपरा ॥३८॥

जब देहादि ये सब विश्व झूँठा है तब आकाश के समान ब्रह्मही है यह जानों तुह्मारे बीच भेद नहीं है ॥ ३८ ॥

परेण सहजात्मापि ह्यभिन्नः प्रतिभाति मे ।
व्योमाकारं तथैवैकं ध्याता ध्यानं कथं भवेत्३९

मुझको मालूम होता है कि परमेश्वर से जीवात्मा अलग नहीं है यह जीव आकाश के आकार का है एक है ध्यान करने वाला है ॥ ३९ ॥

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत्।

एतत्सर्वं न मे किंचिद्विशुद्धोऽहमजोऽव्ययः ४०

जो काम मैं करता हूं जो खाताहूं जो हवन करता हूं जो देता हूं ये सब मेरा कुछ नहीं है मैं शुद्ध हूं अजन्माहूं और नाशरहित हूं ॥ ४० ॥

सर्वं जगद्विद्धिनिराकृतीदं ।
सर्वं जगद्विद्धि विकारहीनम् ॥
सर्वं जगद्विद्धि विशुद्धदेहं ।
सर्वं जगद्विद्धि शिवकरूपम् ॥ ४१ ॥

इस सब जगत्को निराकार जानो सब जगत् को विकार हीन समझो सब जगत् को शुद्ध देहवाला समझो सब जगत् को एक शिवका रूप समझो ॥ ४१ ॥

तत्वं त्वं हि न सन्देहः किं जानाम्यथवा पुनः
असंवेद्य स्वसंवेद्यमात्मानं मन्यसेकथम् ॥ ४२

तु तत्वरूप हैं इसमें सन्देह नहीं है और इससे ज्यादामैं क्या कहूं परन्तु आत्माको, जो जाना न जाय और जो जान लिया जाय ये दोनों बात क्यों मानते हो ॥४१ ॥

मायाऽमाया कथ तात छायाछाया न विद्यते।
तत्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरंजनम् ॥ ४३

हे तात ! जो मायाहै वह अमाया किस प्रकार हो सक्ती है जो छाया है वह अछाया कैसे हो सकतीहै यह सब एक तत्व है आकाश के समान है, शुद्ध है ॥ ४३ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्ध इति मे निश्चिता मतिः॥

मैं आदि, मध्य, अन्त, से, मुक्त हूं मुझको बन्धन कभी नहीं है स्वभाव से निर्मल और शुद्ध हूं यह मेरी बुद्धि ने निश्चय किया है ॥ ४४ ॥

महदादि जगत्सर्वं न किंचित्प्रतिभाति मे ।
ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः॥४५॥

महत्तत्व से लेकर जो सब जगत है वह मुझको कुछ नहीं मालुम होता है केवल सब ब्रह्म ही है फिर वर्ण और आश्रम की स्थिति किस तरह है ॥ ४५ ॥

जानामि सर्वथा सर्वमहमेको निरन्तरम् ।
निरालम्बमशून्यं च शून्यं व्योमादिपंचकम्४६

मैं अकेला ही सब तरह से सब जगत् को जानता हूँ वह नित्य है आधार रहित है शून्य नहीं है आकाश से आदि लेकर जो पांच तत्व हैं सो शून्य हैं ॥ ४६ ॥

न षण्ढो न पुमान्नस्त्री न बोधो नैव कल्पना ।
सानन्दो वा निरानन्दमात्मानं मन्यसे कथं४७

आत्मा न नपुंसकहै, न पुरुषहै, न स्त्रीहै, न बोधहै, न कल्पनारूप है फिर आत्माको सानन्द वा निरानन्द क्यों मानता है ॥ ४७ ॥

षडंगयोगान्न तु नैव शुद्धं ।
मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम् ॥
गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं ।
स्वयं च तत्वं स्वयमेव शुद्धम्॥ ४८॥

षडङ्ग योग से शुद्ध न होता होय यह बात नहीं है मनके नाशसे शुद्ध न होय यहभी बात नहीं है गुरूके उपदेश से शुद्ध न होय यहभी नहीं है अर्थात् इन सब बातोंसे शुद्ध होजाता है वह स्वयं तत्वहै आपही शुद्ध है ॥ ४८

नहि पंचात्मको देहो विदेहो वर्तते न हि ।
आत्मैव केवलं सर्वं तुरीयं च त्रयं कथम् ॥ ४९

पांच तत्वों से बना हुआ देह नहीं है विदेह भी नहीं है सब केवल आत्मा ही है फिर सुषुप्ति और समाधि आदि अवस्था किस तरह हैं ॥ ४९ ॥

न बद्धो नैव मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक्।
न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः५०

न मैं बँधा हूं न छूटा हूं,न ब्रह्म से अलग हूं, नमैं करने वाला हूँ, न भोगने वाला हूं व्याप्य और व्यापक इनसे वर्जित हूँ ॥ ५० ॥

यथा जलं जले न्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम् ।
प्रकृतिं पुरुषं तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥५१॥

जैसे जल में जल मिला देने से जलही होताहै कुछ भेद नहीं रहता है इसी तरह प्रकृति और पुरुष मुझको भिन्न नहीं मालूम होते हैं। ५१।

यदि नाम न मुक्तोऽसि न बद्धोऽसि कदाचन।
साकारं च निराकारमात्मानं मन्यसे कथम् ५२

जो तू न मुक्त है न बंधा हुआ है तौ अपने लिये साकार और निराकार क्यों मानता है ॥ ५२ ॥

जानामि ते परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम्।
यथा परं हि रूपं यन्मरीचिजलसन्निभम्।५३।

तेरे असली रूप को मैं जानता हूं प्रत्यक्ष में आकाश के समान है और दूसरा जो रूप है सो मृगतृष्णा के जल के समान है ॥ ५३ ॥

न गुरुर्नोपदेशश्च न चोपाधिर्न मे क्रिया।
विदेहं गगनं विद्धि विशुद्धोऽहं स्वभावतः५४

न मेरे गुरू है, न उपदेश है, न मेरे उपाधि है, न क्रिया है, आकाश रूपी देह है सो तू जान मैं स्वभाव से ही शुद्ध हूं ॥ ५४ ॥

विशुद्धोऽस्यशरीरोऽसि न ते चित्तं परात्परं।
अहं चात्मा परं तत्वमितिवक्तुं न लज्जसे ५५

तू विशेष शुद्ध है देह रहित है सबसे परे जो चैतन्यहै वह तेरे नहीं है मैं आत्मा हूं परमतत्वहू यह कहने में तुझ को लाज नहीं आती है ॥ ५५ ॥

कथं रोदिषि रेचित्त ह्यात्मैवात्मात्मना भव।
पिव वत्सकलातीतमद्वैतं परमाऽमृतम् ॥ ५६॥

रे चित्त! तू क्यों रुदन करता है तू परमात्मामें मिलजा हे वत्स! जिसमें कि कला नहीं है ऐसे अद्वैतरूपी परम अमृत का पान कर ॥ ५६ ॥

नैव बोधो न चाबोधो न बोधाबोध एवच।
यस्येदृशः सदाबोधः स बोधो नान्यथा भवेत् ५७

न तो वह बोध है, न अबोध है न इन दोनों के बीच में है जिसका कि इस प्रकारका ज्ञान है वही ज्ञानहै इसके विरुद्ध नही होसकता है ॥ ५७ ॥

ज्ञानं न तर्को न समाधियोगो।
न देशकालौ न गुरूपदेशः ॥
स्वभावसंवित्तिरहंच तत्व।
माकाशकल्पं सहजं ध्रुवंच ॥ ५८ ॥

न ज्ञान है, न तर्क है, न समाधि और योग है, न देशकाल है, न गुरूका उपदेशहै मैं स्वभावही से ज्ञानस्वरूप परम तत्व आकाश के समान स्वाभाविकऔर नित्यहूं।

न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम्।

विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बंधो मुक्तिः कथं मम॥५९॥

न मैं पैदा हुआ हूं, न मेरे शुभ अशुभ कर्म हैं, मैं विशुद्ध निर्गुण ब्रह्म हूं, मेरा बन्धन और मोक्ष किसप्रकार हो सकते हैं ॥ ५९ ॥

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अन्तरं हि न पश्यामि सबाह्याभ्यन्तरः कथं॥६०

यदि वहदेव सर्वव्यापी है, स्थिरहै, पूर्णहै, नित्यहै, तोमैं उसमें कुछ अन्तर नहीं देखताहूँ फिर वह बाहर और भीतर किस तरह से है ॥ ६० ।

स्फुरत्येव जगत्कृत्स्नमखण्डितनिरन्तरम् ।
अहो मायामहामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना ॥६१॥

वह परमेश्वर अखंडित और निरंतर इस विश्वकोप्रकाशित करता है तब अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि द्वैत और अद्वैत की जो कल्पना है वह माया का बड़ा भारी मोह है ॥ ६१ ॥

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा ।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः॥६२॥

साकार और निराकार दोनों के सम्बन्ध में सदा यहही कहा करते हैं कि यहभी नहीं, यहभी नहीं तब भेद और अभेद इन से अलग एक केवल शिवहीं वर्तमान हैं ॥ ६२॥

न ते च माता च पिता च बन्धु-
र्न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम्॥
न पक्षपातो न विपक्षपातः।
कथं हि संतप्तिरियं हि चित्ते॥६३॥

न तेरे माता है, न पिता है,न बन्धुहै, न स्त्रीहै, नतेरे पुत्रहै, न मित्र है, न तेरा किसीके साथ पक्षपात हैन विपक्षपात है फिर चित्तमें ऐसा सन्ताप क्यों है॥ ६३॥

दिवा नक्तं न ते चित्त उदयास्तमयौ न हि।
विदेहस्य शरीरत्वं कल्पयंति कथं बुधाः॥६४॥

रे चित्त! में तेरे सम्बन्ध में दिन रात नहींहैं,न उदय और अस्तहैं, पंडित लोग अशरीरी का शरीर किसप्रकार से कल्पना करते हैं॥ ६४॥

नाविभक्तं विभक्तं च नहि दुःखसुखादि च।
नहि सर्वमसर्वं च विद्धि चात्मानमव्ययम्॥६५॥

आत्मा के सम्बन्धमें न अभिक्तता है न विभक्तता है न सुखहै, न दुखहै न सम्पूर्णताहैं न अपूर्णताहै आत्मा केवल विनाशरहित जानना चाहिये॥ ६५॥

नाहं कर्ता न भोक्ताच न मे कर्म पुराऽधुना।
न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम्॥६६

न मैं कर्ताहूं न भोक्ताहू न मेरे पहिले कर्मथे न अबहैं,

न मेरे देहहै, न विदेहहै, फिर निर्ममता और ममता कैसे हो सकते हैं ॥ ६६ ॥

न मे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे।
आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम्॥६७

न मेरे विषयादिकदोषहैं, मेरे देहसे आदि लेकर दुःखभी नहीं हैं, मैं एक विशाल आकाशके समान आत्माहूं, सो जान ॥ ६७ ॥

सखे मनः किं बहु जल्पितेन।
सखे मनः सर्वमिदं वितर्क्यम् ॥
यत्सारभूतं कथितं मया ते।
त्वमेव तत्त्वं गगनोपमोऽसि ॥६८॥

हे सखे! मन, बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है, हे सखे! मन, इस सब तर्क वितर्कसे भी क्या प्रयोजन है मैंने जो सारभूत तुमसे कहाहै वह तूही आकाशके समान परम तत्व है ॥ ६८ ॥

येन केनापि भावेन यत्र कुत्र मृता अपि।
योगिनस्तत्र लीयंते घटाकाशमिवाम्बरे ॥६९॥

जिस किसी भावसे, योगी जहां कहीं मरजाय वह परमात्मामें ऐसे लीन होजाता है जैसे घडेके फूटजाने पर उसका आकाशबडे आकाशमें लीन होजाताहै ॥ ६९॥

तीर्थे चान्त्यजगेहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन् ।
समकाले तनुं मुक्तः कैवल्यव्यापको भवेत् ।७०।

जिसको स्मरण नही रहा ऐसा भी योगी तीर्थमें अथवा शूद्र के घर में समान समय में देह त्याग करै तौ संसारके बंधनों से छूटकर मोक्ष स्वरूप होजाता है ॥ ७० ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च द्विपदादिचराचरम् ।
मन्यन्ते योगिनः सर्वं मरीचि जलसन्निभम् ७१

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, और मनुष्य से लेकर चराचर विश्व इन सबको योगीमृगतृष्णाके जल के समान झूठ समझते हैं ॥ ७१ ॥

अतीतानागतं कर्म वर्तमानं तथैव च ।
न करोमि न भुञ्जामि इति मे निश्चला मतिः ७२

जो बीत गये हैं जो आनेवाले हैं और वर्तमान ऐसेहैं जो कर्महैं उनको मैं न करता हूं नभोगता हूं यह मेरी निश्चल बुद्धि है ॥ ७२ ॥

शून्यगारे समरसपूत-
स्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ॥
चरति हि नग्नस्त्यक्त्वा गर्वं ।
विन्दति केवलमात्मनि सर्वम् ॥७३॥

सूने मकान में समान रस से पवित्र होकर अव

अकेला ही बडे सुख से रहता है घमंडको छोड़कर नंगा हो कर घूमता है वह केवल आत्मा के बीचमें सब आनन्द को प्राप्त होताहै ॥ ७३ ॥

त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र।
विन्दति केवलमात्मनि तत्र॥
धर्माधर्मौ नहि नहि यत्र।
बद्धो मुक्तः कथमिह तत्र।

जिसमें कि सुषुप्तिः और समाधि. नहीहैं केवल आत्मा के बीच में चैतन्य को प्राप्त होता है जिसमें कि धर्म अधर्म नहीं हैं उसमें बंधन और मोक्ष किस तरह से हैं ७४

विन्दति विन्दति नहि नहि मन्त्रम्।
छन्दोलक्षणं नहि नहिं तन्त्रम्॥
समरसमग्नो भावितपूतः।
प्रलपितमेतत्परमवधूतः॥ ७५ ॥

मंत्र को नहीं जानता है, नहीं जानता है, छंदोंके लक्षणों को नहीं जानता है, तंत्र को नहीं जानता है, समान रसमें मग्न भावना से शुद्ध होकर एक अवधूत योगी इस गीतको गाताहै ॥ ७५ ॥

सर्वशून्यमशून्यं च सत्यासत्यं न विद्यते।
स्वभावभावतः प्रोक्तं शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ७६

सब जगत् शून्य है और अशून्य है सत्य और असत्य नहीं है शास्त्रके ज्ञान से और अन्तः करण के भावसे यह कहा गया है ॥ ७६ ॥

इति श्री दत्तात्रेय विरचितायां अवधूतगीतायामात्म संवित्युपदेशोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्याय

अवधूत उवाच ।

बालस्य वा विषयभोगरतस्य वापि ।
मूर्खस्य सेवक जनस्य गृहीस्थतस्य ॥
एतद्गुरोः किमपि नैव न चिन्तनीयं ।
कथं त्यजति कोऽप्यशुचौ प्रविष्टम् ॥ १ ॥

बालक हो अथवा विषय भोग में फंसा हुआ हो मूर्ख होय, सेवकजन होय, गृहस्थहोय इस बात का सदुपदेष्टा गुरूके विषयमें कुछ विचार न करै जैसे कि गंदी जगह में पडे हुए रत्नको कोई नहीं छोड़ता है ॥ १ ॥

नैवात्र काव्यगुणा एव तु चिन्तनीयो ।
ग्राह्यः परं गुणवता खलु सार एव ॥

सिन्दूरचित्ररहिता भुवि रूपशून्या ।
पारं न किं नयति नौरिह गन्तुकामान् ॥२॥

गुरूके सम्बन्ध में काव्य और गुणों का विहार नहीं करना चाहिये, गुणवान को सारही ग्रहण करना चाहिये, जो सिंदूरादि अनेक प्रकारके रंगोंसे चित्रित नहींहै ऐसी कुरूप नाव क्या पार जाने वालों को पार नहींलेजातीहै २

प्रयत्नेन विना येन निश्चलेन चलाचलम् ।
ग्रस्तं स्वभावतः शान्तं चैतन्यं गगनोपमम्॥३

जो कि चलायमान नहीं है ऐसे परमात्माने यत्न के विनाही सब जगत को ग्रसलिया वह स्वभाव शांत है और चैतन्य है आकाश के समान है ॥ ३ ॥

अयत्नाच्चालयेद्यस्तु एकमेव चराचरम् ।
सर्वगं तत्कथं भिन्नमद्वैतं वर्तते मम ॥ ४ ॥

जो कि अकेलाही विना यत्न के इस चराचर जगत् को चलायमान करता है सर्व व्यापी है वह पृथक कैसे हो सकता है वह अद्वैत है. मेरे हृदय को ऐसा ही प्रतीत होता हैं ॥ ४ ॥

अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम् ।
गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम्॥५॥

मैं सार से भी सार, शिवरूप, गमन और आगमन से रहित, निर्विकल्प और निराकुल हूं ॥ ५ ॥

सर्वावयवनिर्मुक्तं तदहं त्रिदशार्चितम् ।
संपूर्णत्वान्न गृह्णामि विभागं त्रिदशादिकम् ६।

मैं सब अंग प्रत्यंग से हीन हूं देवता मेरा पूजन करते हैं, मैं देवादि का विभाग ग्रहण नहीं करता हूं क्योंकि मैं पूर्ण रूप हूं ॥ ६ ॥

प्रमादेन न संदेहः किं करिष्यामि वृत्तिवान् ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाश्च यथाजले॥ ७

प्रमादयुक्त होनेपर मुझे कुछ सन्देह नहीं हैं वृत्तिवान होकर भी मैं क्या करूंगा जिस तरह जल से उत्पन्न हो होकर बुलबुले जल ही में लीन होजाते हैं वैसेही ये भी सब आत्मा से उत्पन्न होकर आत्माही में लीनहोजातेहैं

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैवहि ।
मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥ ८ ॥

जैसे जलमें बबूला पैदा होतेहैं और जलही में मिलजाते हैं इसी तरह महत् तत्व से आदि लेकर प्राणी पैदा होकर परमेश्वरमें लीन होजाते हैं ॥ ८ ॥

कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले ।
प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नंप्रतिभाति मे ॥९॥

कोमल पदार्थ तीखे पदार्थ गुड़ और कड़वी वस्तु इनमें

कडुआपन, चञ्चलता और कोमलता जल में पतलापन जैसे वर्तमान है उससे अलग नहीं है इसी तरह प्रकृति और पुरुष अलग नहीं है, यह मुझको मालूम होता है ॥ ९ ॥

सर्वाख्यारहितं यद्यत्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं परम् ।
मनोबुद्धीन्द्रियातीतमकलंकं जगत्पतिम् १० ॥
ईदृशं सहजं यत्र अहं तत्र कथं भवे ।
त्वमेव हि कथं तत्र कथं तत्र चराचरम् ॥ ११ ॥

परमात्मा सर्व नाम से रहित है सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, परे है, मन, बुद्धि इन्द्रिय जहां नहीं पहुँच सकते हैं, कलङ्क रहित है, जगत का पति है ॥ १० ॥ जिसमें ऐसे गुण स्वाभाविक ही हैं, वहां मैं किस तरह से हूं, वहां तू कैसे है, और उस में चराचर जगत् कैसे है ? ॥ ११ ॥

गगनोपमं तु यात्प्रोक्तं तदेव गगनोपमम् ।
चैतन्यं दोषहीनं च सर्वज्ञं पूर्णमेव च ॥ १२ ॥

जो आकाश के समान कहा गया है वह तो आकाश के समान ही है चैतन्य स्वरूप है, निर्दोष है, सर्वज्ञ है पूर्ण है ॥ १२ ॥

पृथिव्यां चरितं नैव मारुतेन च वाहितम् ।
वारिणा पिहितं नैव तेजोमध्ये व्यवस्थितम् १३

वह पृथ्वी पर चलता नहीं है, हवा में उड़ा नहीं है, जल से ढका नहीं है, तेज में स्थित है ॥ १३ ॥

आकाशं तेन संव्याप्तं न तव्द्याप्तं च केनचित् ।
सबाह्याभ्यन्तरं तिष्ठत्यविच्छिन्नं निरन्तरम् १४

उससे आकाश व्याप्त है वह किसी से व्याप्त नहीं है वह बाहर और भीतर ठहरता है अखण्ड है और नित्य है ॥ १४ ॥

सूक्ष्मत्वात्तदहृश्यत्वान्निगुर्णत्वाच्च योगिभिः ।
आलम्बनादि यत्प्रोक्तं क्रमादालम्बनंभवेत् १५

सूक्ष्म होने से, अदृश्य होने से, और निर्गुण होने से, योगियों ने आलम्बन आदि जो कहे हैं इस प्रकार ध्यान करे ऐसे प्रणायाम करे, ये आलम्बन क्रम से होता है १५

सतताऽभ्यासयुक्तस्तुनिरालम्बो यदा भवेत् ।
तल्लयाल्लीयते नान्तर्गुणदोषविवर्जितः ।१६।

निरन्तर अभ्यास करते करते जब योगी ध्यानादिक आलम्बनों से रहित होजाता है तब उस आलम्बन का लय होजाता है तब वह गुण दोषादि से विवर्जित हो, उस परमात्मा में लीन होकर तद्रूप होजाता है ॥ १६ ॥

विषविश्वस्य रौद्रस्य महामूर्छाप्रदस्य च ।
एकमेव विनाशाय ह्यमोघं सहजामृतम् ।१७।

मोह और मूर्छा को देने वाला जोभयंकर विषरूपीविश्वहै ... नाश करने के लिये एक ही अनमोल सहज अमृत है ॥ १७ ॥

भावगम्यं निराकारं साकारं दृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तमन्तरालं तदुच्यते॥ १८ ॥

निराकार जो पदार्थ है वह भावगम्य है, अर्थात् हृदय में भावना द्वाराही जाना जाता है और साकार आंखों से दिखाई देता है, परन्तु भाव और अभाव इनसे जो अलग है उसको अन्तराल कहते हैं ॥ १८ ॥

बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ।
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नालिकेरफलाम्बुवत् ॥ १९ ॥

बाहर की तरफ संसार है, भीतर माया है, और उस से भी भीतर परमात्मा जानने योग्य है जैसे नारियल तो विश्व है उसके भीतर गोला है वह माया है गोला के भीतर जो पानी है वह परमात्मा का रूप है ॥ १९ ॥

भ्रान्तिज्ञानं स्थितं बाह्ये सम्यग्ज्ञानं च मध्यगम्
मध्यान्मध्यतरं ज्ञेयं नालिकेरफलाम्बुवत् ॥२०॥

भ्रांति ज्ञान बाहर स्थित है अच्छा ज्ञान बीच में है उस के भी मध्य में नारियलके जलकी तरह वह चैतन्य है२०

पौर्णमास्यां यथा चन्द्र एक एवातिनिर्मलः ।
तेन तत्सदृशं पश्येद्द्विधादृष्टिर्विपर्ययः॥२१॥

पूर्णमासी में जैसे एक चन्द्रमा ही अति निर्मल है वैसे ही ईश्वर को देखें । और भेद बुद्धि से देखना है वह आदमी की दृष्टि का फेर है ॥ २१ ॥

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वगः ।
दाता च धीरतामेति गीयते नामकोटिभिः॥२२

इसी प्रकार से बुद्धि का भेद सब में नहीं है जैसे दाता धीरज को प्राप्त होता है और उसका यश फैल जाता है इसी तरह परमात्मा का यश फैला हुआ है ॥ २२ ॥

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
यस्तु संबुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥२३

गुरु और बुद्धि इनकी कृपा से मूर्ख हो अथवा पण्डित जो तत्त्वको जान लेता है वह भवसागर से छूट जाताहै२३

रागद्वेषादिनिर्मुक्तः सर्वभूतहिते रतः ।
दृढबोधश्च धीरश्च स गच्छेत्परमं पदम् ॥ २४ ॥

राग और द्वेष से जो अलग हो सब प्राणियों का हित करै, दृढ बोध हो, धीर हो, वह परम पदको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

घटेभिन्ने घटाकाशं आकाशे लीयते यथा ।
देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि ॥२५॥

घड़े के फूटने पर घड़े का आकाश जैसे बड़े आकाश में लीन होजाता है इसी तरह योगी देह के त्यागने पर अपने रूप परमात्मा में लीन होजाता है ॥ २५ ॥

उक्तेयं कर्मयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः ।

न चोक्ता योगयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः २६

जिनने कर्म छोड़ दिये हैं उनकी यह गति कही है जो अंतसमय बुद्धि होजाती है वही गति होती है॥ २६॥

या गतिः कर्मयुक्तानां सा च वागिंद्रियाद्वदेत्।
योगिनां या गतिः क्वापि ह्यकथ्या भवतोर्जिता २७

कर्म युक्तों की जो गति है वह वाणी और इन्द्रियों से होती है योगियों की जो गति है वह कभी कहने में नहीं आसकती और वह आपसे बढी हुई है॥ २७॥

एवं ज्ञात्वा त्वमुं मार्गं योगिनां नैव कल्पितम्।
विकल्पवर्जनं तेषां स्वयं सिद्धिः प्रवर्तते॥ २८॥

जो कल्पना नहीं किया गया है और विकल्पसे वर्जित है ऐसे योगियों के इस मार्ग को जानकर उनकी सिद्धि आपही होजाती है॥ २८॥

तीर्थे वान्त्यजगेहे वा यत्र कुत्र मृतोऽपि वा।
न योगी पश्यते गर्भं परे ब्रह्मणि लीयते॥ २९॥

तीर्थ में अथवा शूद्र के घर में जहां कहीं योगी मरजाय वह माता के गर्भ में नहीं आता है परब्रह्म में लीन होजाता है॥ २९॥

सहजमजमचिन्त्यं यस्तु पश्येत्स्वरूपं।
घ्नति यदि यथेष्टं लिप्यते नैव दोषैः॥ ३०॥

सकृदपि तदभावत्कर्म किंचिन्न कुर्यात्त-
दपि न च विबद्धः संयमी वा तपस्वी ३०

स्वाभाविक, अजन्मा और जो विचार करने में न आवे ऐसे स्वरूप को जो देखे और अच्छी तरह चेष्टाकरे वह दोषों से लिप्त नहीं होता है योगी हो अथवातपस्वी उसके बिना कुछ काम न करे वह फिर बन्धन को प्राप्त नहीं होता है ॥ ३० ॥

निरामय निष्प्रतिमं निराकृतिं ।
निराश्रयं निर्वपुषं निराशिषम् ॥
निर्द्वन्द्वनिर्मोहमलुप्तशक्तिकं ।
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥३१॥

जिस में कोई रोग नहीं है जिसकी प्रतिमा नहीं है स्वरूप नहीं है कोई आश्रय नहीं है जिसके कोई अंग नहीं है जिसके कोई सुख नहीं है और सुख दुख नहीं है मोह रहित, सर्व शक्तिमान, नित्य, ऐसे आत्मा को प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

वेदो न दीक्षा न च मुण्डनाक्रिया ।
गुरुर्नाशिष्यो न च यंत्रसंपदः ॥
मुद्रादिकंचापि न यत्र भासते ।
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ।३२।

जिसके बीच में न वेद, न दीक्षा, न मंडलक्रिया, न गुरु न शिष्य न यंत्र न मुद्रादिक प्रकाश करते हैं ऐसे नित्य ईश्वर आत्मा को योगी प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

न शांभवं शाक्ति कमानवं न वा।
पिण्डं च रूपं च पदादिकं न वा॥
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकं च नो।
तमशीमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥३३॥

न तो वह शिवका स्वरूप है न वह शाक्त है न मनुष्य है न पिंड है न रूप है न चरण से आदि लेकर उसके शरीर है न तो उसका आदिहै न अंत है न घड़े से आदि लेकर कोई वस्तु है ऐसे निरंतर ईश्वर आत्मा को योगी प्राप्त होता है॥ ३३ ॥

यस्य स्वरूपात्सचराचरं जगत्।
उत्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपिवा॥
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदास्त-
मीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥३४॥

जिसके स्वरूप से चराचर जगत् पैदा होता है, स्थित होता है, और लीन होजाता है जैसे कि जलसे झाग और बबूला पैदा होते हैं और उसीमें लीन होजाते हैं उस नित्य ईश्वर आत्मा को योगी प्राप्त होता है॥ ३४॥

नाशो निरोधो न च दृष्टिमलनं ॥
बोधेऽप्यबोधोऽपि न यत्रभासते ॥
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किञ्चित् ।
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥२५॥

न तो उसमें नाक का रोकना है न दृष्टि है न वह बैठता है, बोध और अबोध भी जिसमें प्रकाश नहीं करता है जिसमें नाड़ियां नहीं चलती हैं उस नित्य ईश्वर आत्मा को प्राप्त होता है । २५ ॥

नानात्वमेकत्वमुभत्वमन्यता ।
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता ॥
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितं ।
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥२६॥

उसमें अनेकपना नहीं है, एकत्व नहीं है, भेद भी नहीं है, छोटापन, लम्बपन बड़ापन ये भी उसमें नहीं है, प्रमाण, अप्रमाण, समता, इनसे वर्जित है, उस नित्य ईश्वर आत्मा को योगी प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

सुसंयमी वा यदि वा न संयमी ।
सुसंग्रही वा यदि वा नसंग्रही ॥
निष्कर्मको वा यदि वा सकर्मकः ।
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥२७॥

अच्छी तरह जितेन्द्री हो अथवा न हो अच्छी तरह संग्रह करने वाला हो अथवा न हो कर्म करता हो अथवा न करता हो सर्वव्यापी जो ईश्वर आत्मा है उसको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

मनो न बुद्धिर्नशरीरमिंद्रियं ।
तन्मात्रभूतानि न भूत पञ्चकम् ।
अहंकृति श्चापि वियत्स्वरूपकं ॥
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥३८॥

न उसमें मन है, न बुद्धि है, न शरीर है, न इन्द्रिय है न पंचभूत है, न इन्द्रियों की मात्रा है, अहंकार भी नहीं है, शून्य रूप है, वह ईश्वर नित्य आत्मा है, उसको जीव प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

विधौ निरोधे परमात्मतां गते ।
न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ॥
शौचं न वाशौचमलिंङ्गभावना ।
सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥३९॥

विधि, आज्ञा, निरोध, रोकना ये जब परमात्मा को प्राप्त होजाय तब भेद रहित योगी के चित्त में न शौच है न अशुद्ध है और चिन्ह रहित जो पदार्थ है उसकी भावना और न विधि निषेध रहता है ॥ ३९ ॥

मनो वचो यत्र न शक्तमीरितुं ।

नूनं कथं यत्रगुरूपदेशता ॥
इमां कथामुक्तवतो गुरोस्तद् ।
युक्तस्य तत्त्व हि समंप्रकाशते ॥४०॥

जिसमें मन और वचन नहीं पहुँच सकते हैं उसमें निश्चय गुरू को उपदेश कैसे बन सकता है, इस कथा को कहने वाला जो योग्य गुरू है उसको यह तत्व समान प्रकाशित होता है ॥ ४० ॥

इतिश्री दत्तात्रेय विरचितायां अवधूतगीतायामात्म
संवित्युपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



❀ तृतीयोऽध्यायः ❀



अवधूत उवाच ।

गुण विगुणविभागो वर्तते नैव किंचित् ।
रतिविरतिविहीनं निर्मलं निष्प्रपंचम् ॥
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं ।
कथमहमिह वन्दे व्योमरूपं शिवं वै ॥१॥

अवधूत बोला—जिसमें गुण और अवगुण का विभाग नहीं है जिसमें कुछ प्रीति और द्वेष नहीं है वह शुद्ध है माया से रहित है गुण और अवगुणसे हीन है व्यापक

है सब विश्व उसीका रूप है ऐसे शून्यरूप शिवको किस प्रकार वन्दना करूं ॥ ३५ ॥

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च ।
कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च ॥
एवं विकल्प रहितोऽहमलं शिवश्च ।
स्वात्मानमात्मनि सुमित्रकथं नमामि २

सफेद से आदि लेकर उसमें रंग नहीं हैं नित्य कल्याण रूप है कार्य कारण रूप है शिव है इस प्रकार भेद रहित मैं अत्यन्त शिव हूं हे मित्र ! अपने आत्मा के बीच में आत्माको किस तरह नमस्कार करूं ॥ २ ॥

निर्मूलमूलरहितो हि सदादितोऽहं ।
निर्धूमधूमरहितो हि सदादितोऽहम् ॥
निर्दीपदीप रहितो हि सदोदितोऽहं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।३।

जो मूल नहीं हैं और मूल दिखाई देता है उससे मैं अलग हूं सदा उदय हूं जो धूआ नहीं है और धूआ दिखाई देता है उससे अलग हूं सदा उदय हूं ज्ञानामृतरूप हूं आशाके समान हूं समर हूं ॥ ३ ॥

निष्काममकाममिहनाम कथं वदामि ।
निःसंगसंगमिहनाम कथं वदामि ॥
निःसारसाररहितं च कथं वदामि ।

ज्ञानामृत समरसं गगनो पमोऽहम् । ४ ।

कामना रहित जो काम है उसका वर्णन कैसे करूं, निःसंग को संगता में किस प्रकार कहूं निःसार को साररहितवत्त कैसे कहूं मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं, समान रस हूं, आकाश के समान हूं ॥४॥

अद्वैतरूपमखिलं हि कथं वदामि ।
द्वैतस्वरूप मखिलं हि कथं वदामि ॥
नित्यं त्वनित्यमखिलं हि कथं वदामि ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥५॥

वह सम्पूर्ण अद्वैत रूप है उसका वर्णन कैसे करूं, सम्पूर्ण द्वैत स्वरूप है निश्चय करके कैसे वर्णन करूं, सम्पूर्ण नित्य और अनित्य रूप है कैसे वर्णन करूं, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं, समान रस हूं, आकाश के समान हूं ॥ ५ ॥

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गतागतं हि ।
आद्यन्तमध्यरहितं न परापरं हि ॥
सत्यंवदामि खलु वै परमार्थतत्त्वं ।
ज्ञनामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ६ ॥

न तो वह स्थूल है, न कृश है न जाता है न आता है, आदि, अन्त, मध्य इनसे रहित है उसके पहिला पिछला

नहीं है मैं परमार्थ तत्व को निश्चय सत्य कहता हूं, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ, समान रस हूं आकाश समान हूं ॥ ६ ॥

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि।
संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च ॥
संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥७॥

सब इन्द्रियों को आकाश के समान न समझो, सब विषयों को आकाश के समान समझो, निर्मल एक है बन्धन उसमें है नहीं। सो ज्ञान मैं अमृत स्वरूप हूं, समान रस हूं, आकाशके समान हूं॥ ७ ॥

दुर्बोधबोधगहनो न भवामि तात।
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनो न भवामि तात ॥
आसन्नरूपगहनो न भवामि तात।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।८।

खोटा ज्ञान मुझको नहीं है, कठिन से जो देखने में आवे ऐसा भी नहीं हूं, हे तात! समीप में प्राप्त होनेवाला जिसका रूप है ऐसा भी नहीं हूं, हे तात! मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं समान रस हूं आकाश के समान हूं,॥८॥

निष्कर्म कर्मदहनो ज्वलनो भवामि।
निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि ॥

निर्देहदेहदहनो ज्वलनो भवामि ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ ९ ॥

जो कर्म नहीं हैं और देखने में कर्म मालुम होता है उनके जलानेवाला में अग्नि हूं सुख और दुःख इनको जलानेवाला में अग्नि हूं जो देह नहीं है और देह सरीके मालुम होते हैं उनको जलानेवाला में अग्नि हूं ज्ञान और अमृत रूप हूं समान रस हूं आकाश के समान हूं ॥ ६ ॥

निष्पापपापदहनो हि हुताशनोऽहं ।
निर्धर्मधर्मदहनो हि हुताशनोऽहम् ॥
निर्बन्धबन्धदहनो हि हुताशनोऽहं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १०॥

पाप और पुण्य इनको जलानेवाला अग्नि हूं. जो धर्म नहीं है और धर्म सरीके मालुम होते हैं उनके जलानेवाला मैं निश्चय अग्नि हूं मोक्ष और बन्धन इनके जलानेवाला मैं निश्चय अग्नि हूं ज्ञान और अमृत रूप हूं समान रस हूं आकाश के समान हूं ॥ १० ॥

निर्भावभाव रहितो न भवामि वत्स ।
निर्योगयोग रहितो न भवामि वत्स ॥
निश्चित्तचित्तरहितो न भवामि वत्स ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ११ ॥

हे वत्स ! मैं भाव और अभाव से रहित नहीं हूँ,
हे वत्स ! मैं नियोग और योग से रहित नहीं हूँ,
हे वत्स ! मैं चैतन्य और अचैतन्य से रहित नहीं हूँ,
ज्ञान और अमृत रूप हूँ समान रस हूँ आकाश के
समान हूं ॥ ११ ॥

निर्मोहमोहपदवीति न मे विकल्पो।
निःशोकशोकपदवीति न मे विकल्पः॥
निर्लोभलोभपदवीति न मे विकल्पो।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ १२॥

वैर और प्रीत मुझमें नहीं है और भेद नहीं है सुख
और दुख नहीं हैं उदारता और लोभ ये मुझ में नहीं
है भेद नहीं है मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं, समानहूं अंकाश
के समान हूं ॥ १२ ॥

संसारसंततिलता न च मे कदाचित्।
संतोषसंततिसुखे न च मे कदाचित्॥
अज्ञानबन्धनमिदं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ १३॥

मुझ में संसार की फैली हुई लता कभी नहीं है संतोष
का विस्तार युक्त सुख मुझमें नहीं है ये अज्ञान का बंधन
मुझ में कभी नहीं है मैं ज्ञान और अमृतरूप हूं समान
रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥ १३ ॥

संसारसंततिरजो न च मे विकारः।
संतापसंततितमो न च मे विकारः॥
सत्वं स्वधर्मजनकं न च मे विकारः।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्।१४।

संसार के विस्तार की रज मेरे बीच में नहीं है न उसका विकार है न मेरे दुख का तमोगुण है न उसका विकार है अपने धर्म को पैदा करने वाला तमोगुणभी नहीं है न विकार है, मैं ज्ञान और अमृतरूप हूं समान रस हूँ आकाश के समान हूं।। १४ ॥

संतापदुःखजनकोन विधिःकदाचित्।
संतापयोगजनितं न मनः कदाचित्॥
यस्मादहंकृतिरियं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्१५

संताप और दुःखको पैदा करनेवाली विधि मुझमें नहीं है संताप और योग से पैदा हुआ मन भी कभी नहीं है क्योंकि मेरे कभी अहंकार नहीं है मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं समान रस हूँ आकाशके समान हूँ॥ १५ ॥

निष्कम्पकम्पनिधनं नविकल्पकल्पं।
स्वप्नप्रबोधनिधनं न हिताहितं हि॥
निःसारसारनिधनं न चराचरं हि।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्।१६।

विकार रहित जो विकार है सो झूठा है जो विलक्षणता से रहित विलक्षण है वह असत्य है यदि सत्य है तो केवल आत्मा है हे मन ! तू सबकी तरह क्यों रोता है ॥१६॥

नो वेद्यवेदकमिदं न च हेतुतर्क्यं ।
वाचामगोचरमिदं न मनो न बुद्धिः ।
एवं कथं हि भवतःकथयामि तत्वं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१७॥

यह वेद्य वा वेदक नहीं है कर्म वा कारण नहीं है, यह वाक्य से अगोचर है, मन और बुद्धि इसको नहीं पा सका है, इस प्रकार मैं आत्मतत्व को किस तरह कह सकता हूँ, मैं ज्ञानामृत समरस और आकाश के समान हूं ॥ १७ ॥

निर्भिन्नभिन्नरहितं परमार्थतत्वम् ।
अन्तर्बहिर्नहि कथं परमार्थतत्वम् ॥
प्राक्संभवं न च रतं नहि वस्तु किंचि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहं ॥१८

यह निर्भिन्न भेद रहित परमार्थ तत्व है, इसके भीतर बाहर कुछ नहीं है, प्राकसंभवता नहीं है, लिप्तता नहीं है, इसके अतिरिक्त और कुछ वस्तु नहीं है, यह ज्ञानामृत समरस और आकाश के समान है ॥ १८ ॥

रागादिदोपरहितं त्वहमेव तत्त्वं ।
देवादिदोपरहितं त्वहमेव तत्त्वम् ॥
संसारशोकरहितं त्वहमेव तत्त्वम् ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहं ॥१९॥

अहंतत्व, रागादि दोपरहित, देवादि दोप रहित, संसार शोकरहित; अहंतत्व, ज्ञानामृत समरस और गगनोपम हूँ ॥ १९ ॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं ।
कालत्रयं यदि च नेति कथंदिशश्च ॥
शान्तं पदं हि परमं परमार्थतत्त्वं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२०॥

अहंतत्व सम्बन्ध में जाग्रत स्वप्न सुषुप्तावस्था रूप स्थानत्रय नहीं है, तब तीसरा कैसे हो सकता है, अहंतत्व सम्बन्ध में कालत्रय नहीं है, तब सम्पूर्ण दिशा कैसे हो सकती है परमार्थ तत्व परम शांतिप्रद स्वरूप, ज्ञानामृत, समरस और गगनोपम हूँ ॥ २० ॥

दीर्घो लघुःपुनरितीह न मे विभागो ।
विस्तारसंकटमितीह न मे विभागः ॥
कोणं हि वर्तुलमितीह न मे विभागो ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २१ ॥

मेरे दीर्घ और लघु विभाग कुछ नहीं है, विस्तीर्ण और संकीर्ण ये विभाग भी नहीं हैं, कोण और गोल ये विभाग भी मेरे नहीं है, परन्तु मैं ज्ञानामृत समरस और गगनोपम हूं ॥ २॥

मातापितादि तनयादि न मे कदाचि-
ज्जातं मृतं न च मनो न च मेकदाचित्।
निर्व्याकुलं स्थिर मिदं परमार्थतत्त्वं।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २२।

मेरे माता, पिता को पुत्रादि कभी नहीं हुए, न मैंने कभी जन्म लिया न मैं मरा, मेरे कभी मन स्थिरहैयह परमार्थ तत्व व्याकुलता रहित, स्थिर हैं मैं ज्ञानामृत,, समरस और गगनोपम हूं।। २२ ॥

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं।
निर्लेपलेपमविचारमनन्तरूपम् ॥
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपम्।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२३॥

मैं शुद्ध, विशुद्ध, अविचार्य और अनन्तरूप हूँ, मैं निर्लेपलेप अनन्तरूप हूँ मैं निखण्ड खण्ड अविचार और अनन्तरूप हूँ, मैं ज्ञानामृत समरस और गगनोपम हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्र संति ।
स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र संति ॥
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २४॥

जो वह परमार्थ तत्व एक रूप है निर्मल है, तो उसमें ब्रह्मादिक देवता कैसे हैं, स्वर्गादिक स्थान कैसे हैं, मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं समान रस हूँ आकाश के समान हूं ॥ २४ ॥

निर्नेति नेति विमलोहि कथं वदामि ।
निःशेषशेषविमलो हि कथं वदामि ॥
निर्लिङ्गलिंगाविमलो हि कथं वदामि ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २५॥

अस्ति और नास्ति इनसे निश्चय शुद्ध है उसका वर्णन कैसे करूं, अशेष और शेष इनसे शुद्ध है उसका वर्णन कैसे करूं, चिन्ह और अचिन्ह इनसे वह निश्चय शुद्ध है उसका वर्णन कैसे करूं, मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं, समानरस हूं आकाश के समान हूं ॥ २५ ॥

निष्कर्मकर्मपरमं सततं करोमि ।
निःसंगसंगरहितं परमं विनोदम् ॥
निर्देहदेहरहितं मननं विनोदं ।

ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२६॥

कर्म और अकर्म इनको अच्छी तरह करता हूं, संग और कुसंग इन से रहित हूं, ये परम आनन्द है, देह और विदेह से रहित हूं. ये बडा आनन्द है, मैं ज्ञान और अमृतरूप हूं समान रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥ २६ ॥

मायाप्रपंचरचना न च मे विकारो।
कौटिल्यदम्भरचना न च मे विकारः।
सत्यानृतेतिरचना न च मे विकारो।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ २७॥

न तो मेरे माया का प्रपञ्च है न विकार है न कुटिलता और न कपट है न उसका विकार है सत्य और असत्य नहीं है न विकार है, मैं ज्ञान और अमृतरूपहूं समान रस हूँ आकाश के समान हूं ॥ २७ ॥

संध्यादिकालरहितं न च मे वियोगो।
ह्यन्तःप्रबोधरहितं बधिरो न मूकः॥
एवं विकल्परहितं न च भावशुद्धं।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२८॥

मैं सन्ध्यादि कालों से रहित हूं, मेरा वियोग नहीं है भीतर मेरे ज्ञान है, न बहिरा हूं, न गूंगा हूं, इसप्रकार

विकल्प से रहित हूँ, भावना से शुद्ध नहीं हूँ. मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ, समान रस हूँ, आकाश के समान हूँ ॥ २८ ॥

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै ।
निश्चित्तचित्तविगतं हि निराकुलं वै ॥
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२९॥

जो नाथ नहीं हैं नाथ सरीके मालूम होते हैं उनसे मैं अलग हूँ, व्याकुलता रहित हूँ, जो चैतन्य नहीं है और चैतन्य सरीका मालूम होता है उनसे मैं अलग हूँ व्याकुल नहीं हूँ, सर्वव्यापी हूँ, सो जान, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ, समान रस हूँ आकाश के समान हूं ॥ २९ ॥

कान्तारमन्दिरमिदं हि कथं वदामि ।
संसिद्धसंशयमिदं हि कथं वदामि ॥
एवं निरन्तरसमं हि निराकुलं वै ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३०॥

कान्तार मन्दिर वा संसिद्ध संशय किस प्रकार कहूँ, मैं निरन्तर सम निराकुल, ज्ञानामृत, समरस और आकाश के समान हूं ॥ ३० ॥

निर्जीवजीवरहितं सततं विभाति ।

निर्बीजबीजरहितं सततं विभाति ।।
निर्वाणबन्धरहितं सततं विभाति ।।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।।३१।।

यह ईश्वर जड़ और चेतन से रहित होकर निरन्तर प्रकाश करता है बन्धन और मोक्ष से रहित होकर निरन्तर प्रकाश करता है, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ समान रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥ ३१ ॥

संभूतिवर्जितमिदं सततं विभाति ।
संसारवर्जितमिदं सततं विभाति ।।
संहारवर्जितमिदं सततं विभाति ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।।३२।

यह ईश्वर विभूतियों से रहित प्रकाश करता है, यह निरन्तर संसार से वर्जित प्रकाश करता है यह निरन्तर प्रलय से रहित प्रकाश करता है, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ समान रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥ ३२ ॥

उल्लेखमात्रमपि ते न च नामरूपं ।।
निर्भिन्नभिन्नमपि ते न हि वस्तु किंचित्।
निर्लज्ज मानस करोषि कथं विषादं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।।३३।।

तेरे नाम रूप लिखने मात्र के भी नहीं, भेद और अभेद ये वस्तु तेरे कुछ नहीं है, हे निलज्ज ! मानस ! मन तू क्यों दुखी होता है, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ समान रस हूँ आकाश के समान हूं ॥ ३३ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः ।
किं नाम रोदिषि सखे न च जन्मदुःखम् ॥
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३४॥

हे सखे ! तू क्यों रुदन करताहै, न तेरे बुढापा है, न मृत्यु है, हे सखे ! तू क्यों रुदन करता है, न तेरे जन्म है न दुःख है, हे सखे, तू क्यों रोता है तेरे विकार नहीं है मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं समान रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥३४ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपं ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विरूपम् ॥
किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि ॥
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३५ ॥

हे सखे ! तू क्यों रोता है तेरे स्वरूप नहीं है हे सखे! तू क्यों रोता है तेरे बुरा रूप नहीं है हे सखे! तू क्यों रोता है तेरे अवस्था नहीं है, मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूँ समान रस हूँ आकाश के समान हूँ ॥ ३५ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते मनांसि।
किं नाम रोदिषि सखे न तवेन्द्रियाणि।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥२६॥

हे सखे! क्यों रोता है तेरे अवस्था नहीं है, हे सखे! क्यों रोता है, तेरे मन नहीं है, हे सखे क्यों रोता है, तेरे इन्द्रियां नहीं हैं मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं समान रस हूं आकाश के समान हूं॥ २६॥

किं नाम रोदिषि सखे न च तेऽस्ति कामः।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते प्रलोभः।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विमोहः।
ज्ञानामृतं समरसं गगमोपमोऽहम्॥२७॥

हे सखे! क्यों रोता है तेरे काम नहीं है, हे सखे! क्यों रोता है तेरे लोभ नहीं है, हे सखे! क्यों रोता है मोह नहीं है मैं ज्ञान और अमृत समान हूं॥ २७॥

ऐश्वर्य मिच्छसि कथं न च ते धनानि।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते हि पत्नी।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते ममेति।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ २८॥

तेरे धन नहीं है ऐश्वर्य की इच्छा क्यों करता है तेरे स्त्री नहीं है ऐश्वर्य की इच्छा क्यों करता है तेरे ममता नहीं है ऐश्वर्य की इच्छा क्यों करता है मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं ।। ३८ ।।

लिंगप्रपंचजनुषी न च ते न मे च ।
निर्ल्लज्जमानसमिदं च विभाति भिन्नम् ॥
निर्भेदभेदरहितं न च ते न मे च ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३९॥

हे निर्लज्ज ! लिंग को प्रकट करने वाला शरीर न तेरे है न मेरे, ये जो भेद दीखता है यह मानसिक है भेद और अभेद से रहित तेरे है न मेरे, मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं ॥ ३९ ॥

नो वाणुमात्रमपि ते हि विरागरूपं ।
नो वाणुमात्रमपि ते हि सरागरूपम् ॥
नो वाणुमात्रमपि ते हि सकामरूपं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥४०॥

नतौ तेरे कुछ भी वैराग्य है न तेरे कुछ भी विषय लालसा है, न तेरे कुछ भी कामना है मैं ज्ञान और अमृत स्वरूप हूं॥ ४० ॥

ध्याता न ते हि हृदये न च ते समाधि–

ध्यानं न ते हि हृदये न बहिः प्रदेशः ॥
ध्येयं न चेति हृदये न हि वस्तु कालो ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥४१॥

न तेरे हृदय में कोई ध्यान करने वाला है न तेरे समाधि है न तेरे हृदय में ध्यान है न बाहर का प्रदेश है तेरे हृदय में ध्यान करने लायक वस्तु नहीं है न वस्तु है, न काल है मैं ज्ञान और अमृत रूप हूं ॥ ४१ ॥

यत्सारभूतमखिलं कथितं मया ते ।
न त्वं न मे न महतो न गरुर्नशिष्यः॥
स्वच्छन्दरूपसहजं परमार्थतत्त्वं ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥४२॥

मैंने जो सम्पूर्ण सारांश तुमसे कहा है वह न तो तू है न मैं हू न बड़ा है न गुरू है न शिष्य है वह परमार्थ तत्व अपनी इच्छानुकूल है और स्वाभाविक है मैं ज्ञान और अमृत रूप हू ॥ ४२ ॥

कथमिह परमार्थं तत्त्वमानन्दरूपं ।
कथमिह परमार्थंनैवमानन्दरूपम् ॥
कथमिहपरमार्थं ज्ञानविज्ञानरूपं ।
यदि परमहमेकं वर्तते व्योमरूपम् ॥४३॥

तत्व और आनन्द रूपी यहां परमार्थ कैसे है और आनन्दरहित परमार्थ कैसे है ज्ञान और विज्ञान रूपी परमार्थ कैसे है क्यों कि मैं केवल एक हूं और शून्य-रूप हूं ॥ ४३ ॥

दहनपवनहीनं विद्धि विज्ञानमेकं ।
अवनिजलविहीनं विद्धि विज्ञानरूपम् ॥
समगमनविहीनं विद्धि विज्ञानमेकं ।
गगनमिव विशालं विद्धि विज्ञानमेकम्॥४४॥

अग्नि और पवन इनसे ही न एक विज्ञान है सो जान पृथ्वी और जल से हीन ज्ञान एक है सो जान, वह समान है और चलता फिरता नहीं है सो जान वह विज्ञान एक है और आकाश की तरह विशाल है सो जान ॥ ४४ ॥

न शून्यरूपं न विशून्यरूपम् ।
न शुद्धरूपं न विशुद्धरूपम् ।
रूपं विरूपं न भवामि किंचित् ॥
स्वरूपरूपं परमार्थतत्वम् ॥४५॥

न तो वह शून्यरूप है न विशेष शून्य रूप है न शुद्ध रूप है विशुद्ध रूप है मैं रूपवान हूं न कुरूप हूं मैं अपना ही रूप हूं और परमार्थ तत्व हूं ॥ ४५ ॥

मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागंमुञ्च हि सर्वथा ।

त्यागात्यागाविषंशुद्धममृतं सहजे ध्रुवम् ॥४६॥

निश्चय संसार को छोड़दे २ सब ओर से निश्चय त्यागको छोड़दे त्यागकरना और लेना ये विषहै वह तत्व शुद्ध है अमृत है स्वाभाविक नित्य है ॥

इति श्री दत्तात्रेयविरचितायां अवधूतगीतायामात्मसंवित्युपदेशोनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

श्रीदत्त उवाच ।

नावाहनं नैव विसर्जनं वा ।
पुष्पाणि पत्राणि कथं भवन्ति ॥
ध्यानानि मन्त्राणि कथं भवन्ति ।
समासमं चैव शिवार्चनं च ॥१॥

श्रीदत्त बोला न आवाहन है न विसर्जन है पुष्प और पत्र कैसे हैं ध्यान और विषम कैसे हैं सम और विषम कैसे हैं शिवका पूजन कैसे है ॥ १ ॥

न केवलं बन्धविबन्धमुक्तो ।
न केवलं शुद्धविशुद्धमुक्तः ॥

न केवलं योगवियोग मुक्तः
स वै विमुक्तो गगनापमोऽहम् ॥ २ ॥

वह केवल बन्धन और मोक्षसे ही अलग नहीं है न केवल शुद्ध अशुद्धसे ही मुक्त है न केवल संयोग वियोग से ही मुक्त है वह निश्चय सबसे छूटा हुआ है मैं आकाश के समान हूँ॥ २॥

संजायते सर्वमिदं हि तथ्यं।
संजायते सर्वमिदं वितथ्यम् ॥
एवं विकल्पा मम नैव जातः।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥ ३॥

जन्मलेता है, वह सब सत्य है जन्मलेता है वह सब झूठ है इस प्रकार भेद मेरे नहीं है मैं मोक्ष स्वरूपहूं और निरोग हूं ॥ ३ ॥

न साञ्जनं चैव निरञ्जनं वा
नचान्तरं वापि निरन्तरं वा ॥
अन्तर्विभिन्नं नहि मे विभाति ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥ ४ ॥

नतो वह मायासे युक्त है न मायासे अलग है न उस में भेद है न अभेद है भीतर अलग मुझको नहीं दीखता है मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोग हूं ॥ ४ ॥

अबोधबोधो मम नैव जातो ।
बोधस्वरूपं मम नैव जातम् ॥
निर्बोधबोधं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥५॥

अज्ञान और ज्ञान मेरे बीचमें पैदा नहीं हुए ज्ञान स्वरूप मुझमें पैदा नहीं हुआ जिसमें ज्ञान नहीं हैऐसे ज्ञान को कैसे कहूं मैं मोक्ष स्वरूप और निरोग हूं॥५॥

न धर्मयुक्तो न च पापयुक्तो ।
न बन्धयुक्तो न च मोक्षयुक्तः ॥
युक्तं त्वयुक्तं न च मे विभाति ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ६ ॥

नहीं मेरे धर्म है न अधर्महै न बन्धन है न मोक्षहैन योग्य और अयोग्य मेरे बीचमें प्रकाश नहीं करते हैं मैं मोक्ष स्वरूपहूं और निरोग हूं ॥ ६ ॥

परापरं वा न च मे कदाचित् ।
मध्यस्थभावो हि न चारिमित्रम् ॥
हिताहितं चापि कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ७ ॥

पहिला और पिछला मेरे कभी नहीं है न बीचका

भाव है न शत्रु और मित्र है हित और अहितकैसे कहूंमैं मोक्ष रूपहूं और निरोग हूं॥ ७ ॥

नो पासको नैवमुपास्य रूपं ।
नचोपदशो न च मे क्रिया च ॥
संवित्स्वरूपं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ८ ॥

न तौ उपासना करनेवाला है न उपासना के योग्यरूप है न उपदेश है न क्रियाहै ज्ञानस्वरूप का कैसे वर्णनकरूं मैं मोक्षरूप हूं और निरोग हूं ॥ ८ ॥

नो व्यापकं व्याप्य मिहास्ति किंचित् ।
न चालयं वापि निरालयं वा ॥
अशून्यशून्यं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ९॥

न तौ यहां कुछ व्यापकहै न व्यापक होनेके योग्य कुछहै न उपदेशहै न क्रिया है फिर उस ज्ञानस्वरूप को कैसे कहूं मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोगहूं ॥ ९ ॥

न ग्राह को ग्राह्यकमेव किंचित् ।
न कारणं वा मम नैव कार्यम् ॥
अचिन्त्याचिन्त्यं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १० ॥

नतौ कोई उसको पकड़नेवाला है न वह पकड़ने योग्य है न मेरे कुछ कारण है न कार्यहै वह ईश्वर विचार करने में नहीं आसकता है उसकारूप कैसे कहूँ मैं मोक्षरूपहूँ और निरोग हूँ ॥ १० ।

न भेदकं वापि न चैव भेद्यं ।
न वेदकं वा मम नैव वेद्यम् ॥
गतागतं तात कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ११ ॥

न भेद करनेवाला है नभेद के योग्यहै न जाननेवाला है न जानने में आसकता है न जाताहैन आता है हे तात! उसका कैसे वर्णनकरूं मैं मोक्षस्वरूपहूं और निरोगहूं११।

न चास्ति देहो न च मे विदेहो ।
बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ॥
रागो विरागश्च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

न मेरे देहहै न विदेह है न बुद्धि और मनहै न इन्द्रियां हैं राग और विरागका कैसे वर्णन करूं मैं मोक्ष स्वरूप और निरोग हूं ॥ १२ ॥

उल्लेखमात्रं नहि भिन्नमुच्चै ।
रुल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै ॥

समासमं मित्र कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥१३॥

लिखने मात्रको भी वह किसीसे अलग नहीं है लिखने मात्र को भी वह छिपा नहीं है हे मित्र ! सम विषम कैसे कहूं मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोग हूँ ॥ १३ ॥

जितेन्द्रियोऽहं त्वजितेन्द्रियो वा ।
न संयमो मे नियमो न जातः ॥
जयाजयौ मित्र कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥१४॥

मैं जितेन्द्रिय हूं और अजितेन्द्रिय हूँ न मेरे संयम है न नियमहै हे मित्र ! जीतना और हारना मेरे नहीं है उसका वर्णन कैसे करूं मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोगहूं ॥ १४ ॥

अमूर्तमूर्तिर्न च मे कदाचिद् —
आद्यन्तमध्यं न च मे कदाचित् ॥
बलाबलं मित्र कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥१५॥

झूठी मूर्ति मेरे कभी नहीं है आदि अन्त मध्य ये मेरे कभी नहीं है हे मित्र ! बल और अबलको कैसे कहूं मैं मोक्ष स्वरूप हूँ और निरोग हूँ ॥ १५ ॥

मृतामृतं वापि विषाविषं च ।

संजायते तात न मे कदाचित्॥
अशुद्धशुद्धं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥१६॥

हे तात ! मरना और न मरना विष और अविष ये मेरे कभी पैदा नहीं होते हैं अशुद्ध और शुद्ध नहीं है इसका वर्णन कैसे करूं मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोग हूं॥१६॥

स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा ।
नक्तं दिवो वापि न मे कदाचित्॥
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम्॥ १७॥

सोना और जागना ये मेरे नहीं हैं न योग मुद्रा है रात और दिन मेरे कभी नहीं है सुषुप्ति और समाधिका वर्णन कैसे कहूं मैं मोक्षरूप हूं और निरोग हूं ॥ १७ ॥

संविद्धि मां सर्वविसर्वमुक्तं ।
माया विमाया न च मे कदाचित् ॥
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥ १८ ॥

सब और अधूरा ये मुझमें नहीं है माया और अमाया मुझमें कभी नहीं है संध्यासे आदि लेकर काल नहींहै कर्म नहींहै फिर कैसे कहूं मैं मोक्षस्वरूपहूं और निरोगहूं॥१८॥

संविद्धि मां सर्वसमाधियुक्तं ।
संविद्धि मां लक्ष्याविलक्ष्यमुक्तम् ॥
योगं वियोगं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥१९॥

सब समाधियों से युक्त मुझको जान जो देखलिया जाय और जो देखने में न आवे इनसे अलग मुझको जान योग और वियोग कैसे कहूँ में मोक्ष स्वरूपहूं और निरोग हूं१९

मूर्खोऽपि नाहं न च पण्डितोऽहं ।
मौनं विमौनं न च मे कदाचित् ॥
तर्कं वितर्कञ्च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२०॥

नमैं मूर्खहूं न पंडितहूं मौन और विशेष मौन ये मेरे कभी नहींहै तर्क और कुतर्क भी नहीं है फिर उसका कैसे वर्णन करूं मैं मोक्ष स्वरूपहूं और निरोग हूं ॥ २० ॥

पिता च माता च कुलं न जाति-
र्जन्मादिमृत्युन च मे कदाचित् ॥
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२१॥

न मेरे माता है न पिताहै कुल है न जातिहै मेरे कभी

जन्म मृत्यु नहीं है स्नेह और मोह नहींहै फिर कैसे वर्णन करूं मैं मोक्ष स्वरूप हूँ और निरोग हूं ॥ २१ ॥

अस्तं गतो नैव सदोदितोऽहं ।
तेजो वितेजो न च मे विभाति ॥
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि ।
स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२२॥

मेरा अस्त नहीं है सदा उदय है तेज और अन्धकार ये मुझमें प्रकाश करतेहैं सायंकाल प्रातःकाल आदि मेरे नहींहै कर्म भी नहीं है फिर कैसे वर्णन करूं मैं मोक्षरूपहूं और निरोग हूं ॥ २२ ॥

असंशयं विद्धि निराकुलंमां-
असंशयं विद्धि निरन्तर माम् ॥
असंशयं विद्धि निरञ्जनं मां ।
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥२३॥

निश्चय मुझको व्याकुलता से रहित जान निश्चय मुझको व्यापक जान निश्चय मुझको माया रहित जान मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोग हूं ॥ २३ ॥

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति ।
शुभाशुभं कर्म परित्यजन्ति ॥
त्यागामृतं तात पिबन्ति धीराः ।

स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२४॥

धीर मनुष्य सब ध्यानोंको छोड़ देते हैं शुभ अशुभ कामोंको छोड़ देते हैं हे तात ! वे त्याग रूपी अमृतको पीते हैं मैं मोक्ष स्वरूप हूं और निरोग हूं ॥ २४ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र ।
छन्दोलक्षणं नहि नहि तत्र ॥
समरसमग्नो भावितपूतः ।
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २५ ॥

नतो इसमें काव्य है न छन्द और लक्षण है समान रसमें मग्न होकर भावना से शुद्ध होकर अवधूत केवल तत्वको कहता है ॥ २५ ॥

इति श्री दत्तात्रेयविरचितायाँ अवधूत गीतायां स्वामिकार्तिक संवादे स्वात्मसंवित्युपदेशोनाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



❀ पंचमोऽध्यायः ❀



श्रीदत्त उवाच ।

ओमिति गदितं गगनसमं ।
तन्न परापरसारविचार इति ॥

अविलासविलासनिराकरणं ।
कथमक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥ १ ॥

श्रीदत्त बोला ॥ वह ईश्वर ओंकार रूप कहा गया है पहिला और पिछला इनके सारका विचार उसमें नहीं है अविलास और विलास ये उसमें नहीं है फिर अक्षर और अनुस्वार का उच्चारण कैसे है ॥ १ ॥

इति तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः ।
प्रतिपादितमात्मनि तत्त्वमसि ॥
त्वमुपाधिविवर्जित सर्वसमं ॥
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥२॥

इस प्रकार "तत्वं असि" इत्यादि श्रुतियों से तू प्रतिपादन किया गया है आत्मा के बीच में तत्त्व है तू माया से अलग है सब में समान है हे चित्त ! तू सबकी तरह क्यों विलाप करता है ॥ २ ॥

अध ऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमं ।
बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् ॥
यदि चैकविवर्जितसर्वसमं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥ ३॥

ऊपर और नीचे से अलग है सब में समान है बाहर और भीतर से अलग है सब में समान है यदि एक सब

से अलग सब में एकसा है तो रेमन तु सबकी तरह क्यों रुदन करता है ॥ ३ ॥

हि काल्पितकल्पविचार इति ।
नहि कारणकार्यविचार इति ॥
पद संधिविवर्जितसर्वसमं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥४॥

यह कल्पित और कल्प का विचार नहीं है, कार्य्य और कारण का विचार नहीं है, यह पद और सन्धियों से रहित है सब में समान भाव है, फिर तु सर्वसम होकर मनमें क्यों रोता है ॥ ४ ॥

नहि बोधविबोधसमाधिरिति ।
नहि देहविदेहसमाधिरिति ॥
नहि कालविकालसमाधिरिति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥५॥

न तो ज्ञान और अज्ञान की समाधि है न देह और विदेह की समाधि है, न समय कुसमय की समाधि है रेमन ! सबकी तरह क्यों विलाप करता है ॥ ५ ॥

नहि कुंभ नभा नहि कुंभ इति ।
नहि जीववपुर्नहिजीव इति ।
नहि कारणकार्यविभाग इति ॥

किमु रोदिषिमानसि सर्वसमम् ॥६॥

नतौ घडेका आकाश है न घड़ा है न जीवका शरीर है न जीव है कारण और कार्य का विभाग है फिर हे मन ! क्यों विलाप करता है। ॥ ६ ॥

इह सर्वनिरन्तरमोक्ष पदं ।
लघुदीर्घविचारविहीन इति ॥
नहि वर्तुल कोणविभाग इति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥७॥

यहां सब के बीच में मोक्षका पद है छोटे बडे का उस में विचार नहीं है गोलाकार और कार्यका विभाग नहीं है फिर हे मन! तु सबकी तरह क्यों विलाप करता है ।७।

इह शून्यविशून्यविहीन इति ।
इह शुद्धविशुद्धविहीन इति ॥
इह सर्वविसर्वविहीन इति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥८॥

यहां शून्य और विशून्य से अलग है यहां वह शुद्ध और अशुद्ध से अलग है यहां सब और थोड़ा इनसे अलग है हे मन ! सबकी तरह क्यों विलाप करता है ॥ ८ ॥

नहि भिन्नविभिन्नविचार इति ।

बहिरन्तरसंधिविचार इति ॥
अरिमित्राविवर्जितसर्वसमं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥ ९ ॥

भेद और अभेदका इसमें विचार नहीं हैं बाहर भीतर और बीच में, इनका उसमें विचार नहीं है शत्रु और मित्र ये उसमें नहीं सब में समान है फिर हे मन ! सब की तरह क्यों रोता है ॥ ६ ॥

नहि शिष्यविशिष्यसरूप इति ।
न चराचर भेद विचार इति ॥
इह सर्वनिरन्तर मोक्षपदं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥ १० ॥

शिष्य और अशिष्य का स्वरूप नहीं है चराचर का भेद नहीं है यहां सब में व्यापक है और मोचस्वरूप है हे मन ! सबकी तरह क्यों रोता है ॥ १० ॥

ननु रूपविरूपविहीन इति ।
ननु भिन्नविभिन्नविहीन इति ॥
ननु सर्गविसर्गविहीन इति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥ ११ ॥

निश्चय वह रूप और कुरूप से अलग है निश्चय वह

भेद और अभेद से अलग है निश्चय वह सृष्टि और वि-
सर्ग से अलग है फिर हे मन ! सबकी तरह क्यों विलाप
करता है ॥ ११ ॥

न गुणागुणपाशनिबन्ध इति ।
मृत जीवनकर्म करोमि कथम् ॥
इति शुद्धनिरंजनसर्वसमं ।
किमु रोदिपि मानसि सर्वसमम् ॥१२॥

यह गुण और अगुण के पाश से बँधा हुआ नहींहै,
फिर मरण वा जीवन का विचार कैसे कर सकता हूँ।
यह शुद्ध निरंजन और सर्व सम तत्व रूप है, फिर सर्व
सम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ १२ ॥

इह भावविभाव विहीन इति ।
इह कामविकामाविहीन इति ॥
इह बोधतमं खलु मोक्षसमं ।
किमु रोदिपि मानसि सर्वसमम् ॥१३॥

सर्वसम स्वरूप में भाव विभाव नहीं है और
निकाम भी नहीं है, यह बोधतम और मोक्ष के समानहै।
इस लिये तू सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है॥१३॥

इह तत्वनिरन्तरतत्वमिति ।
नहि संधिविसंधिविहीन इति ॥

यदि सर्वविवर्जितसर्वसमं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥१४॥

इसमें तत्व वा निरन्तर तत्व नहीं है, सन्धि विसन्धि भी नहीं है, यदि यह सर्व विवर्जित है तो सर्वसम हो कर भी तु मन, मनमें क्यों रोता है॥१४॥

अनिकेतकुटी परिवारसमं ।
इह संगविसंगविहीनपरम्॥
इह बोधविबोध विहीनपरं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥१५॥

इसके कुटी वा परिवार कुछ भी नहीं है, इसमें संग विसंग भी नहीं है, इसमें बोध और विबोध भी नहीं है इस लिये तु सर्व सम होकर भी क्यों रोता है॥ १५॥

अविकारविकारमसत्यमिति ।
अविलक्षविलक्षमसत्यमिति॥
यदि केवलमात्मनि सत्यमिति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं॥१६॥

अविकार वा विकार ये सब सत्य नहीं है, अविलक्षण वा विलक्षण ये भी सब सत्य नहीं है, यदि केवल आत्मा ही सत्य है तो इन बातों के निश्चय होने पर भी तु सर्व सम होकर मन, मन में क्यों रोता है॥ १६॥

इह सर्वतमं खलु जीव इति।
इह सर्व निरन्तरजीव इति॥
इह केवलनिश्चलजीव इति॥
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ १७॥

इसमें सर्वतम जीव है, इस में सर्व निरन्तर जीव है, इसमें केवल निश्चल जीव है. अतएव तु सर्व सम होकर मन, मनमें क्यों रोता है॥ १७॥

अविवेकविवेकमबोध इति॥
अविकल्पविकल्पमबोध इति॥
यदि चैकनिरन्तरबोध इति।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ १८॥

अविवेक वा विवेक यह सब अबोध मात्र है, अविकल्प वा विकल्प यह सब अज्ञान मात्र है, यदि सर्वसम तत्व एक और निरन्तर बोधमात्र है, तब तु सर्वसम होकर मन! मनमें क्यों रोता है॥ १८॥

नहि मोक्षपदं नहि बन्धपदं।
नहि पुण्यपदं नहि पापपदम्॥
नहि पूर्णपदं नहि रिक्तपदं।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं॥ १९॥

न तो मोक्ष का पद है, न बन्धन का पद है, न पुण्य का पद है, न पाप का पद है, न पूरा पद है, न रीता पद है, फिर हे मन ! सबकी तरह क्यों विलाप करता है ॥ १९ ॥

यदि वर्णविवर्णविहीन समं ।
यदि कारणकार्यविहीनसमं ॥
यदिभेदाविभेदाविहीनसमं ।
किमु रोदिषि मानासि सर्वसमं ॥२॥

समतत्त्व यदि वर्ण विवर्ण से हीन है, यदि कारण और कार्य्य से विहीन है यदि भेद और अभेद से हीनहै, तो तू सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २० ॥

सर्वनिरन्तर सर्वचिते ।
इह केवलनिश्चलसर्वचिते ॥
द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते ।
किमु रोदिषि मानासि सर्वसमं ॥ २१ ॥

यह तत्व सर्व निरन्तर, सर्व चैतन्य जागरूक, केवल निश्चल भाव में सर्व चैतन्य है, इसी तरह द्विपदादि विवर्जित सबमें ही चैतन्य है, अतएव तू सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २१ ॥

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं ।

रतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतं ॥
दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम् ॥ २२ ॥

यह तत्व निरन्तर सर्वगत है, रति निर्मल वा निश्चल रूप से सर्वगत है, दिन रात्रि से रहित होकर सर्व गत है अतएव तु सर्वसम होकर मन, मन में क्यों रोताहै॥२२॥

नहि बन्धविबन्धसमागमनं ।
नहि योगवियोगसमागमनं
नहि तर्कवितर्कसमागमनं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ २३ ॥

इस तत्व में बन्ध औरविबन्ध का समागम नहीं है, योग और वियोग का भी समागम नहीं है. तर्क वितर्क का भी समागम नहीं है, अतएव तु सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २३ ॥

इह कालविकालनिराकरणं ।
अणुमात्रकृशानुनिराकरणं ॥
नहि केवलसत्यनिराकरणं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं ॥२४॥

इस तत्व में काल विकाल का निराकरण है अणुमात्र पदार्थ का भी निराकरण है; केवल सत्य का निराकरण

नहीं है, फिर तू सर्वसम होकर मन, मन में क्यों रोता है ॥ २४ ॥

इह देहविदेहविहीन इति।
ननु स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरं ॥
अभिधानविधानविहीनपरं।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं॥ २५ ॥

इसमें देह विदेह नहीं है, यह स्वप्न और सुषुप्ति से विहीन है, अविधान विधान से दूर है, फिर तू सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २५ ॥

गगनोपमशुद्धविशालसमं।
अविसर्वविवर्जितसर्वसमं ॥
गतसारविसारविकारसमं
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं ॥२६॥

यह समतत्व आकाश के समान विशाल, सब से रहित और सबके समान है, यह सार और विसार और विकार से रहित सर्वसम है अतएव तू सर्वसम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २६ ॥

इह धर्मविधर्मविरागतरम।
इह वस्तुविवस्तुविरागतरम् ॥
इह कामविकामविरागतरं।

किमु रोदिषि मानसि सर्व समं ।। २७ ॥

इसमें धर्म और अधर्म में विराग होता है, वस्तु और अवस्तु में विराग होता है, काम और विकाम में भी विराग होता है, फिर तु सर्व सम होकर मन, मनमें क्यों रोता है ॥ २६ ॥

सुख दुःख विवर्जित सर्वसमं ।
इह शोकविशोकविहीनपरं ॥
गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं ॥

यह सब मम तत्व सुख दुख से रहित, शोक, विशोक से विहीन, गुरु शिष्य के रहित परम तत्व है, तब सर्व सम होकर तू मन, मन में क्यों रोता है ॥ २८ ॥

न किलांकुरसारविसार इति ।
न चलाचलसाम्यविसाम्यमिति ॥
अविचार विचारविहीनमिति ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं ॥ २९॥

इसमें सार विसार का अंकुर मात्र भी नहीं है, चला विषमता, अविचार या विचार कुछ भी नहीं है फिर तू सब सम होकर मन, मन में क्यों रोता है ।२९॥

इह सारसमुच्चयसारमिति ।

कथितं निजभावविभेद इति ॥
विषये करणत्वमसत्यमिति ।
किमु रोदिपि मानस सर्वसमं ॥ ३० ॥

इसमें सारों का भी सार है, अपने भाव के विभेद के कारण से यह तत्व कहा गया है, पार्थिक विषय में जो कुछ किया जाय वह सब असत्य ही है, अतएव सर्वसम होकर मन! मनमें क्यों रोता है ॥ ३० ॥

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो।
वियदादिरिदं मृगतोयसमं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वसमं ।
किमु रोदिषि मानसि सर्वसमं ॥३१॥

बहुधा श्रुति कहती हैं कि आकाशादि सब पदार्थ जो दृष्टिगत हो रहे हैं वे सब मृगतृष्णा के समान हैं, अतएव यदि एक निरंतर और सर्वसम है, तो तू मन मनमें क्यों रोता है ॥ ३१ ॥

विन्दति विन्दति नहिं नहिं यत्र ।
छन्दो लक्षणं नहिं नहिं तत्र ॥
समरस मग्नो भावित पूतः ।
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥३२॥

न तो यह काव्य है और न इसमें छंद के ही लक्षण हैं समरस में निमग्न होकर अवधूत शुद्ध भाव से इस परम तत्व को कहता है ॥ ३२ ॥

इति श्री दत्तात्रेय विरचितायां अवधूतगीतायां स्वामि-
कार्तिक सम्वादे आत्मसंवित्युपदेशोनाम समदृष्टि
कथनम् नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



षष्ठोऽध्यायः ।



श्रीदत्त उवाच ।

बहुधा श्रुतियः प्रवदन्ति वयं ।
वियदादिरिदं मृगतोयसमं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवम् ।
उपमेयमथो ह्युपमा च कथं ॥ १ ॥

श्रीदत्त बोला कि अनेक श्रुतियां कहती हैं कि आकाशादि यह सम्पूर्ण जगत मृगतृष्णा के जलके समान है, यदि एक निरन्तर सर्व शिव उपमेय है, तो उसकी उपमा कैसे हो सकती है ॥ १ ॥

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरं ।
ननु कार्यविकार्यविहीनपरम् ॥

यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
यजनं च कथं तपनं च कथम् ॥२॥

वह भाग विभाग से हीन पदार्थ है. वह कर्म और अकर्म से हीन परम पदार्थ है, यदि सर्व शिव एक और निरंतर है, तो अजन ही किस प्रकार से सम्भव है, और तपस्या ही किस प्रकार से सम्भव है ॥ २ ॥

मन एव निरन्तर सर्वगतं ।
ह्यविशालविशालविहीनपरम् ॥
मन एव निरन्तर सर्वशिवं ।
मनसापि कथं वचसा च कथम् ॥३॥

मन ही निरन्तर सर्वगत है, मन ही अविशाल और विशालता से हीन है, मन ही निरन्तर सर्व शिवमय है. यदि मन ऐसा है तो मन और वाणी द्वारा उसका अर्चन किस तरह हो सकता है ॥ ३ ॥

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम् ।
उदतानुदितस्य निराकरणम् ॥
यदि चैकनिरन्तर सर्वशिवं ।
रविचन्द्रमसौ ज्वलनश्च कथम् ॥४॥

यदि वह सर्व शिव एक निरन्तर है तो दिन रात्रिका

भेद, अथवा उदित अनुदित का भेद निराकृत हो जाते हैं तो सूर्य्य, चन्द्रमा वा अग्नि का प्रकाश ही किस तरह सम्भव हो सकता है ॥ ४ ॥

गतकामविकामविभेद इति ।
गतचेष्टविचेष्टविभेद इति ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वं शिवं ।
बहिरन्तरभिन्नगतिश्च कथम् ॥५॥

यदि सर्व शिव एक निरन्तर और सत्य है तो काम विकाम विभेद, वा चेष्टा विचेष्टा भेद नष्ट होजाता है, फिर बाहर भीतर इस प्रकार का भिन्न भेद किस प्रकार होसकता है । ५ ।

यदि सारविसारविहीन इति ।
यदि शून्यविशून्यविहीन इति ॥
यदि चैक निरन्तरसर्व शिवं ।
प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥ ६ ॥

यदि सार, विसार शून्य, विशून्य, यह सब कुछ भी नहीं है, यदि एक और निरन्तर सर्व सत्य है तो पहला वा पिछला किस तरह सम्भव होसकता है ॥ ६ ॥

यदि भेदविभेदनिराकरणं ।
यदि वेदकवेद्यनिराकरणम् ॥

यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।

तृतीयं च कथं चरमं च कथम् ॥७॥

यदि भेद करने वाला और भेद इनसे अलग है यदि जानने वाला और जानने योग्य इनसे अलग है यदि एक है और अन्तर रहित शिव रूपहै तौ तीसरा और चौथा कैसे ॥ ७ ॥

गदितागदितं नहि सत्यमिति ।
विदिताविदितं नहि सत्यमिति ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि कथम् ॥८॥

कहा हुआ और न कहा हुआ ये सत्य नहीं है जाना हुआ और न जाना हुआ यह सब सत्य नहीं है यदि एक है और भेद रहित सब में शिवरूप है तौ विष की इन्द्रियों में बुद्धि और मन कैसे है ॥ ८ ॥

गगनं पवनो नहि सत्यमिति ।
धरणी दहनो नहि सत्यमिति ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
जलदश्च कथं सलिलं च कथम् ॥९॥

आकाश और पवन ये सच्चे नहीं हैं पृथ्वी और पवन सच्चे नहीं हैं और भेद रहित सब में शिव रूप हैं तौ

बादल और जल कैसे है ॥ ९ ॥

यदिकल्पितलोकनिराकरणं ।
यदि कल्पितदेवनिराकरणं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
गुणदोषविचारमतिश्च कथं ॥१०॥

यदि कल्पना किये हुए लोक को दूर करने वाला है यदि कल्पना किये हुए देवताओं से अलग है यदि एक है और भेद रहित सब में शिवरूप है तो दोष की बुद्धि कैसे है ॥ १० ॥

मरणामरणं हि निराकरणं ।
करणाकरणं हि निराकरणं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
गमनागमनं हि कथं वदति ॥ ११ ॥

मरना और जीना करना और न करना इस में निश्चय नहीं है यदि एक है और भेद रहित है सबमें शिवरूप है तो जाना आना कैसे होता है ॥ ११ ॥

प्रकृतिः पुरुषो नहि भेद इति ।
नहि कारणकार्यविभेद इति ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
पुरुषापुरुषं च कथं वदति ॥ १२ ॥

प्रकृति पुरुष और भेद निश्चय नहीं है कारण कार्य का भेद नहीं है यदि एक है और रहित सबमें शिवरूप है तो पुरुष और प्रकृति कैसे होते हैं ॥ १२ ॥

तृतीयं नहि दुःखसमागमनं ।
न गुणाद्वितीयस्य समागमनं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
स्थविरश्चयुवा च शिशुश्च कथं ॥ १३ ॥

तीसरे जिसमें दुःख की प्राप्ति नहीं गुण से सुखकी प्राप्ति नहीं है यदि एक है निरन्तर सबमें शिवरूप है तो बूढ़ा जवान बालक ये कैसे है ॥ १३ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनपरं ।
ननु कारणकर्तृविहीनपरं ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
अविनष्टविनष्टमतिश्च कथं ॥ १४ ॥

निश्चय आश्रम और वर्ण इनसे अलग है और कर्ता इन से निश्चय हीन है यदि एक है और निरन्तर सबमें शिवरूप है तो अविनाशी और विनाशी ये बुद्धि कैसे है ॥ १४ ॥

ग्रसिताग्रसितं च वितथ्यमिति ।
जनिताजनितं च वितथ्यमिति ॥

यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ।
अविनाशि विनाशि कथं हि भवत्१५

असना और न असना ये झूठे हैं पैदा होना और न होना ये झूंठे हैं यदि एक है और भेद रहित है सबमें शिवरूप है तो अविनाशी और नाशवान ये कैसे हैं।१५

पुरुषापुरुषस्य विनष्टमिति।
वनितावनितस्य विनष्टमिति ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं।
अविनोदविनोदमतिश्च कथं ॥१६॥

पुरुष और नपुंसक इनका नाश है स्त्री पतिका नाश है यदि एक भेद रहित सबमें शिव रूप है तो आनन्द और दुःखकी बुद्धि कैसे हैं ॥ १६ ॥

यदि मोहविषाद विहीनपरो।
यदि संशयशोकविहीनपरः ॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं।
अहमेति ममेति कथं च पुनः ॥ १७ ॥

यदि मोह और दुःख से हीन है यदि संशय और शोक से हीन है यदि एक भेद रहित सबमें शिव है तो फिर अहंकारता कैसे है ॥ १७ ॥

ननु धर्मविधर्मविनाश इति।
ननु बन्धविबन्धविनाश इति॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवम्।
इह दुःखविदुःखमतिश्च कथम्॥१८॥

निश्चय धर्म और पापका नाश है निश्चय बन्धन और मोक्ष का नाश है यदि एक भेद रहित सबमें शिव रूप है तौ यहां दुःख और सुखकी बुद्धि कैसे है॥ १८॥

नहि याज्ञिकयज्ञविभाग इति।
न हुताशन वस्तु विभाग इति॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं।
वद कर्मफलानिभवन्ति कथं॥ १९॥

याज्ञिक और यज्ञ इनका विभाग नहीं है न अग्नि और वस्तु का विभाग है यदि एक भेद रहित सबमें शिव है तौ कर्म के फल कैसे होते हैं सो कहो॥ १९॥

ननु शोकविशोक विमुक्त इति।
ननु दर्पविदर्पविमुक्त इति॥
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं।
ननु रागविरागमतिश्च कथम्॥२०॥

निश्चय शोक और अशोक से अलग है निश्चय घमंड और नम्रता इनसे अलग है यदि एक भेद रहित

सब में शिव है तो विषय लालसा और वैराग्य की वुद्धि कैसे है ॥ २० ॥

नहि मोहविमोहविकार इति ।
नहि लोभविलोभविकार इति ॥
यदि चैकनिरंतरसर्वशिवं ।
ह्यविवेकविवेकमतिश्च कथम् ॥ २१ ॥

न तो मोह और विमोह का विकार है, न लोभ और विलोभ का विकार है, यदि एक भेद रहित सब में शिव है, तो अज्ञान और ज्ञान कैसे है ॥ २१ ॥

त्वमहं नहि हंत कदाचिदपि ।
कुलजातिविचारमसत्यमिति ॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति ।
अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥२२॥

तू और मैं ये कभी नहीं है, कुल और जाति का विचार झूँठा है, असल में मैं ही शिव हूँ यहां दण्डवत् कैसे करूँ ॥ २१ ॥

गुरुशिष्यविचारविशीर्ण इति ।
उपदेशविचारविशीर्ण इति ॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति ।
अभिवादनमत्र करोमि कथम् ।२३।

गुरू और शिष्य का विचार नहीं है, न उपदेश का विचार है असल में मैं ही शिष्य हूँ, यहां दण्डवत् कैसे करूँ॥ २३॥

नहि कल्पितदेहविभाग इति।
नहि कल्पित लोकविभाग इति॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति।
अभिवादनमत्र करोमि कथम्॥२४॥

कल्पना किये हुए देहका विभाग नहीं है, न कल्पना किये हुए लोक का विभाग है, वास्तव में मैं ही शिव रूप हूं, फिर प्रणाम किसको करूँ॥ २४॥

सरजो विरजो न कदाचिदपि।
ननु निर्मलनिश्चलशुद्ध इति॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति।
अभिवादनमत्र करोमि कथम्॥२५॥

रज सहित रज से अलग ये कभी नहीं हैं, निर्मल निश्चल और शुद्ध ये भी नहीं है, असल में शिव मैं हूँ फिर प्रणाम कैसे करूँ॥ २५॥

नहि देहविदेहविकल्प इति।
अनृतं चरितं नहि सत्यमिति॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति।

अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥२६॥

देह और विदेह का भेद नहीं है, झूठा आचरण करना सत्य नहीं है, वास्तव में मैं ही शिव हूँ, फिर दण्डवत् कैसे करूं ॥ २६ ॥

विदन्ति विदन्ति नहि नहि यत्र।
छन्दोलक्षणं नहि नहि तत्र॥
समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्व परमवधूतः॥२७॥

इस पुस्तक में काव्य नहीं है, छन्दका लक्षण नहीं है समान रस में मग्न होकर भावना से शुद्ध हुआ, आयोगी इस परम् तत्त्व को कहता है ॥२७॥

इति श्री दत्तात्रेयविरचितायामवधूत गीतायां स्वामिकार्तिक संवादे स्वात्म संवित्युपदेशो मोक्ष निर्णयोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

❀सप्तमोऽध्यायः❀

श्रीदत्त उवाच।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः।
पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः॥
शून्यागारे तिष्ठति नग्नः।

शुद्धनिरञ्जन समरसमग्नः ॥१॥

श्रीदत्त बोला—गली में पड़े हुए कपड़ों से जिसने कंथा बनाली, पुण्य और पाप जिसके मार्ग में नहीं है, शुद्ध माया से रहित समान रस में मग्न हुआ अवधूत नंगा होकर सूने मकान में रहता है ॥ १ ॥

लक्षालक्षविवर्जितलक्ष्यो ।
युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः ॥
केवलतत्त्वनिरञ्जनपूता ।
वादविवादः कथमवधूतः ॥२॥

लक्ष और अलक्ष से जिसका लक्ष्य वर्जित है योग्य और अयोग्य इनसे वर्जित और चतुर है शुद्ध तत्व से पवित्र ऐसा वह योगी है, यहां वाद और विवाद किस प्रकार है ॥ २ ॥

आशापाशविबन्धनमुक्ताः ।
शौचाचारविवर्जितयुक्ताः ॥
एवं सर्वविवर्जित संत—
स्तत्त्वं शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥ ३ ॥

आशा की फांसी के बन्धन जिसके छूट गये हैं, शौच और आचार वर्जित और युक्त है इस प्रकार सब झगड़ों को जिनने त्याग दिया ऐसे संतजन शुद्ध माया रहित तत्व को धारण करते हैं ॥ ३ ॥

कथमिह देहविदेहविचारः ।
कथमिह रागविरागविचारः ॥
निर्मलनिश्चलगगनाकारं ।
स्वयमिह तत्त्वं सहजाकारम् ॥ ४ ॥

यहां देह और विदेह का विचार कैसे है, यहां राग और विराग का विचार कैसे है, यह तत्व निर्मल है निश्चल है और आकाश के समान है, और आप स्वाभाविक आकार है कहने में नहीं आता है ॥ ४ ॥

कथमिह तत्वं विन्दति यत्र ।
रूपमरूपं कथमिह तत्र ॥
गगनाकारः परमो यत्र ।
विषयीकरणं कथमिह तत्र ॥ ५ ॥

जो कि शून्य आकार है उसमें कैसे जाना जाता है रूप और अरूप कैसे है उसमें विषय कैसे होता है ॥ ५ ॥

गगनाकारनिरन्तरहंस—
स्तत्वविशुद्धनिरंजनहंसः ॥
एवं कथमिह भिन्नविभिन्नं ।
बन्धविबन्धविकारविभिन्नम् ॥ ६ ॥

शून्याकार और भेद रहित हंस है शुद्ध तत्व और मायारहित हँस है इस प्रकार के इस में भेद और अभेद

कैसे हैं वह हंस बन्धन और मोक्ष से अलग है ॥ ६ ॥

केवलतत्वनिरन्तरसर्वं ।
योगवियोगौ कथमिह गर्वम् ॥
एवं परमनिरन्तरसर्व—
मेवं कथमिह सारविसारम् ॥ ७ ॥

वह सब केवल तत्व है और माया से रहित है उसमें योग और वियोग कैसे हैं घमंड कैसे हैं इस प्रकार वह सब भेद रहित हैं इसमें सार और असार कैसे हैं ॥ ७ ॥

केवलतत्वनिरंजनसर्वं —
गगनाकारनिरन्तरशुद्धम् ॥
एवं कथमिह संगविसंगं ।
सत्यं कथमिह रंग विरंगम् ॥ ८ ॥

यह सब केवल तत्व है और माया से अलग है शून्याकार है और अत्यन्त शुद्ध है इस प्रकार यहां सङ्ग और कुसङ्ग सत्य कैसे हैं रङ्ग और विशेष रङ्ग कैसे हैं॥८

योगवियोगै रहितो योगी ।
भोगविभोगै रहितो भोगी ॥
एवं चरति हिमन्दं मन्दं ।
मनसा कल्पितसहजानन्दं ॥ ९ ॥

योगी संयोग और वियोग को छोड़कर गृहस्थी

भोग विभोगों को छोड़कर इस प्रकार अपने मनमें स्वाभाविक आनन्द का विचार करके मन्दी चाल से चलते हैं ९।

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैता द्वैतैः कथमिह मुक्तः।
सहजोविरजाःकथमिहयोगीशुद्धनिरंजनसमरसभोगी

जो आदमी ज्ञान और अज्ञान से सदा युक्त है वह द्वैत और अद्वैत से कैसे छूट सकता है जो स्वाभाविक रजोगुण से भरा हुआ है वह शुद्ध माया रहित समान रसका भोगने वाला कैसे हो सकता है ॥ १० ॥

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नो लग्नालग्नविवर्जितलग्नः ।
एवं कथमिह सार विसारःसमरसतत्त्वंगगनाकारः ११

खंडित पदार्थ और अखंडित पदार्थ इनसे जिनका नाश नहीं है मिला हुआ पदार्थ अलग पदार्थ इन दोनों से अलग है समान रस है और तत्व है शून्याकार है उस में सार और असार कैसे हैं ॥ ११ ॥

सततं सर्वविवर्जितयुक्तः ।
सर्वं तत्वविवर्जितमुक्तः ॥
एवं कथमिह जीवितमरणम् ।
ध्यानाध्यानैः कथमिह करणम् ॥१२॥

निरन्तर सबसे अलग है और मिला है सब तत्वों से अलगहैं और आसक्तहैं इसप्रकार इसमें जीना और मरना

कैसेहै और ध्यान करना और न करना इसमें कैसेहै ॥१२॥

इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मेरुमरीचिका ।
अखण्डितमनाकारो वर्तते केवलःशिवः । १३ ।

यह सब संसार इन्द्रजालहै जैसे कि मृगतृष्णा का जल झूंठा है जिसके कि टुकड़े नहीं होते जिसकी कि कोई शकल नहीं है ऐसा एक शिव है ॥ १३ ॥

धर्मादौ मोक्षपर्यन्तंनिरीहाः सर्वथा वयम् ।
कथं रागविरागैश्च कल्पयन्ति विपश्चितः ॥१४॥

हम सब ओर से धर्म से लेकर मोक्ष तक कुछ चेष्टा नहीं करतेहैं फिर विद्वान लोग राग वैराग्य की कल्पना कैसे करते हैं ।। १४ ॥

विन्दति २ नहि २ यत्राछन्दोलक्षणं नहि नहितत्र॥
समरसमग्नो भावित पूतः प्रलपति तत्त्वंपरमवधूतः१५

इस पुस्तक में काव्य नहीं है छन्दों का लक्षण नहीं है समान रसमें मग्न हुआ भावना से शुद्ध हुआ योगी इस परम तत्व को कहता है ॥ १५ ॥

इतिश्री दत्तात्रयविरचितां अवधूतगीतायां स्वामी कार्तिकसंवादे निरंजन कथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीदत्त उवाच ।

त्वद् यात्रया व्यापकता हता ते ।

ध्यानेनचेतःपरता हता ते ॥
स्तुत्वा मया वाक्परता हताते ।
क्षमस्व नित्यं त्रिविधापराधान् ॥ १ ॥

श्रीदत्त बोला तुम्हारी यात्रा से व्यापकता हत हो गई है, तुम्हारे ध्यान से चित्त की विषयपरता दूर होगई है, आपकी स्तुति के द्वारा मेरी वाकपरता नष्ट हो गई है हे गुरो ! मेरे इन तीनों अपराधों को नित्य क्षमा कर॥१॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुःशुचिरकिंचनः ।
अनीहो मितभुक्शान्तःस्थिरो मच्छरणो मुनिः २

अब मुनि का लक्षण कहते हैं ॥ कामों से जिसकी बुद्धि नष्ट न हो, इन्द्रियों को रोकने वाला हो कोमल हो, बेपरवाह हो. पवित्र हो, चेष्टा रहित हो. थोडा भोजन करता हो, शांत हो, स्थिर हो, मेरी शरण हो, उसको मुनि कहते हैं ॥ २ ॥

अप्रमत्तो गंभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदःकल्पो मैत्रःकारुणिकःकविः ३

सावधान हो, गंभीर चित्त वाला हो, धीरज रखने वाला हो, छैओं गुणों को जिसने जीत लिया हो अहंकार से अलग हो, मान देने वाला हो, समर्थ हो सबसे मित्रता रखता हो, दयालु हो चतुर हो,॥ ३ ॥

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुःसर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मासमः सर्वोपकारकः ॥ ४ ॥

कृपालु हो, किसी से बैर न करै, सब प्राणियों कोसहने वाला हो, सत्य सारवाला हो, शुद्ध चित्तवाला हो समान हो, सबका उपकार करने वाला हो ॥ ४ ॥

अवधूतलक्षणं वर्णैर्ज्ञातव्यं भगवत्तमैः ।
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैर्वेदवेदान्तवादिभिः ॥५ ॥

वेद और अक्षरों के अर्थ और तत्वको जाननेवालावेद वेदांत को जानने वाले भगवान के भक्त अवधूत का लक्षण नाम के अक्षरों से जानते है ॥ ५ ॥

आशापाशविनिर्मुक्त आदिमध्यान्तनिर्मलः ।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्यलक्षणम् ॥ ६ ॥

अवभूत में पहिला अक्षर अ है उसका अर्थ कहते हैं आशा की फांसियोंसे अलगहो आदि मध्य अन्त में निर्मल हो, नित्य आनन्द में रहे यह अकार का लक्षण है ॥ ६ ॥

[illegible]ना वर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम् ।
त[illegible] नेषु वर्तेत वकारं तस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

विषय वासना जिसमें है नहीं कुशल पूर्वक बोलता है जो वर्त्तमान है उनमें वर्तता है यह वकार का लक्षण है ७।

धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः ।
धारणाध्याननिर्मुक्तो धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥८॥

अव्'धू,—का अर्थ कहतेहैं।धूलसे जिसका शरीर मैला है चित्त को जिसने रोक रक्खा है निरोगी है धारणा और ध्यान से अलग है यह धूकार का लक्षण है ॥ ८ ॥

तत्त्वचिंता धृता येन चिंताचेष्टा विवर्जितः।
तमोऽहंकारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

तत्व का जो विचार करता हैचिंता से अलग है तम और अहंकार से अलग है यह तकार का लक्षण है॥९॥

आत्मानं चामृतंहित्वा अभिन्नं मोक्षमव्ययम्।
गतो हि कुत्सितःकाको वर्तते नरकं प्रति ॥१०॥

अमृतरूपी भेद रहित मोक्ष स्वरूप अविनाशी आत्मा को छोड़कर खोटा कौआ नरककी ओर जाता है ॥१०॥

मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचने।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दं हृदयं यदि॥ ११॥

मन कर्म वाणी सेमृग नयनी को छोडे। न तेरे स्वर्गहैन मोक्ष हैजो तेरे हृदय में आनन्दहै तो स्त्री कात्याग कर११

न जानामि कथं तेन निर्मिता मृगलोचना।
विश्वासघातकीं विद्धिस्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्॥ १२॥

मैं नहीं जानता हूं कि मृग केसमान नेत्र वाली स्त्रीको उसने क्यों बनाया उसको विश्वासघात करने वाली स्वर्ग, मोक्ष के सुखकी रस्सी जान ॥ १२ ॥

मूत्रशोणितदुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते।

चर्मकुण्डे ये रमन्ते ते लिप्यन्ते न संशयः॥ १३ ॥

मूत्र और रुधिरकी जिसमें दुर्गन्ध है भ्रष्ट जिसका द्वार है ऐसे चमडे के कुंड में जो रमण करते हैं वे लिप्त हो जाते हैं इसमें शक नहीं है ॥ १३ ।

कोटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता।
केनापि निर्मिता नारीबन्धनं सर्वदेहिनाम्॥ १४॥

कुटिलता और कपट से भरी हुई, सत्य और शुद्धिवर्जित सब प्राणियों का बन्धनरूप स्त्री को किसने बनाया ॥१४॥

त्रैलोक्यजननी धात्री सा भगी नरको ध्रुवम्।
तस्या जातो रतस्तत्र हाहा संसारसंस्थितिः॥१५॥

त्रिलोकीको पैदा करनेवाली और धारण करनेवालीभग जिसके अंग में है वह निश्चय नरक है, उसमें फंसनेसे आदमी जन्म लेता है, हा! हा!संसार की कैसी रचना है॥१५॥

जानामि नरकं नारी ध्रुवं जानामि बन्धनम्।
यस्या जातो रतस्तत्र पुनस्तत्रैव धावति ॥१६॥

मैं जानता हूँ कि नारी निश्चय नरकहै, मैं जानताहूंकि स्त्री बन्धन है,इसमें रति करने से आदमी जन्म लेता है फिर भी वहीं दौडकर जाता है॥ १६ ॥

भगादिकुचपर्यंतं संविद्धि नरकार्णवम्।
ये रमन्ते पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम् ॥ १७॥

योनि से लेकर कुच तक नरक का समुद्र जानो ! जो

उसमें रमण करते हैं, वे नरक को कैसे तरते हैं॥ १७॥

विष्टादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम्।
किमु पश्यसि रे चित्त कथं तत्रैव धावसि॥१८॥

विष्टा से आदि लेकर घोर नरक रूपी यह योनिरची है, रेचित्त!तु क्यों देखता है और वहीं क्यों दौडताहै॥१८॥

भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खंडितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १९ ॥

ये भग चमडे का कुंड है बुरी बांस आती है इसमेंघाव है, इस भग से देवता असुर, मनुष्यों से आदि लेकर सब जगत् खण्डित होरहा है ॥ १९ ॥

देहार्णवे महाघोरे पूरितं चैव शोणितम्।
केनापि निर्मिता नारी भगंचैव अधोमुखम् २०

देह रूपी महा घोर समुद्र में रुधिर भरा हुआ है, ऐसी स्त्री को किसने बनाया नीचे को जिसका छिद्र है, ऐसी योनि को किसने बनाया ॥ २० ॥

अन्तरे नरकं विद्धि कौटिल्यं बाह्यमंडितम्।
ललितामिह पश्यंति इहामंत्राविरोधिनीम्॥२१॥

भीतर शरीर में नरक जानो बाहर को कुटिलता है, देखने में सुन्दर मालुम होती है, इस लोक और परलोक में विरोध करने वाली है ॥ २१ ॥

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम्।

यतो याता रतस्तत्र अहो भवविडम्बना ॥२२॥

उसीमें मनुष्यों का जन्म होता है इस प्रकार अपनेपाये हुए शरीर को न जानकर उस में रति करता है, नरक को जाते हैं देखो! कैसी संसार की विडम्बना है॥ २२॥

दर्शनाद्धरते चित्तं स्पर्शनाद्धरते बलम्।
संभोगाद्धरते वीर्यं नारीप्रत्यक्षराक्षसी॥ २३॥

देखने से चित्त को हरलेती है, स्पर्श करने से बलको हरती है, संयोग करने से वीर्य्य को खींच लेती है, इस प्रकार से स्त्री प्रत्यक्ष राक्षसी है॥ २३॥

यत्र मुग्धारमन्ते च सदेवासुरमानवाः।
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः॥२४॥

इसमें देवता असुर और मनुष्य मूर्ख होकर रमण करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं यह सत्य है इस में शक नहीं है॥ २४

अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥२५॥

स्त्री आग के कुण्ड के बराबरहै, पुरुष घी का घड़ाहै. उसका संग होनेसे लीन होजाताहै इससे उसका त्यागकरे।२५।

गौडी माध्वी तथा पैष्ठी विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
चतुर्थी स्त्री सुराज्ञेया ययेदं मोहितं जगत्॥२६॥

गौडी- माध्वी, पैष्टी; ये तीन तरह की मदिराहै चौथी

मदिरा स्त्रीहै जिससे यह संसार मोहित होरहाहैं ॥ २६ ॥

मद्यपानं महापापं नारीसंग तथा भेवत् ।
तस्माद्वायं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवेन्मुनिः॥२७॥

मदिरा पीने में बड़ा पाप है वैसे ही स्त्री संगम में महा पाप है इससे इन दोनों को छोड़कर मुनि को तत्व मेंमन लगाना चाहिये ॥ २७ ॥

चित्ताक्रांत धातु बद्धं शरीरं।
नष्ठे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ॥
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं ।
स्वस्थे चित्तेबुद्धयेःसंभवन्ति ॥२८॥

चित्त से खींचा हुआ धातुओं से बंधा हुआ यह शरीर है चित्त के नष्ट होने पर धातुओं का नाश होजाता है इसलिये चित्त की चारों ओर से रक्षाकरनी चाहियेचित्त के सावधान होने पर बुद्धि सावधान रहती है ॥ २८ ॥

दत्तात्रेयावधूतेन निर्मितानन्दरूपिणी ।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेषां नैव पुनर्भवः ॥२९॥

आनन्द रूपी दत्तात्रेय अवधूत ने यह बनाई है जो इसको पढ़ते और सुनते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता॥ २९॥

इति श्री दत्तात्रेकृतायाम अवधूतगीतायां स्वामि-कार्तिकसंवादे श्री निराकरणं नामाष्टमोऽध्याय ॥ ८॥

हैं और चार वेद जिसके पत्ररूप हैं ऐसे संसार रूप इस अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को ज्ञानी जन अविनाशी अर्थात् नाश रहित कहतेहैं ऐसे इस संसाररूप वृक्ष को जो जानता है वही वेद के अर्थ को जानता है ।। ५ ॥

सर्वस्यचाहंहृदिसन्निविष्टोमत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्चसर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहं ॥ ६ ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयमें विराजमान हूं और मेरे से ही सम्पूर्ण प्राणियों के स्मृति, ज्ञान और ज्ञान का नाश होता है, और सम्पूर्ण वेदों करके मैं ही जानने योग्य हूं, औरमैंही सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्रका रचने वाला हूं और मैंही वेदान्त शास्त्रका जाननेवालाहूं ॥६॥

मन्मना भवमद्भक्तोमद्याजी मांनमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥७॥

अर्थ—हे अर्जुन ! तू मेरे विषे अपने मनको लगा और मेरा ही भक्त हो, और मेराही भजन पूजन आदिकरऔर मेरेकोही नमस्कारकर इसप्रकारमेरे विषे तत्परहुआतूअपने आत्मा को मेरे में युक्त करके मेरे कोही प्राप्त होवेगा॥७॥

इति श्री सप्तश्लोकीगीता भाषाटीकासहितासमाप्ता।